पुस्तकों की सूची

1. सतगुरू ताराचन्द जी महाराज के 101 अनमोल रत्न
2. रूहानी पत्र व सतगुरू आदेश
3. आत्मिक सफर और रूहानी मंजिलें (प्रश्नोतरी)
4. संत अवतरण
5. मुर्शिद-ज्योति (द्विमासिक हिन्दी पत्रिका सदस्यता शुल्कः 70/- रूपये दो वर्ष के लिये)

ईसा मसीह

कौन हैं?

राधास्वामी सत्संग
ताराधाम

ईसा मसीह
कौन हैं?

सर्वाधिकार सुरक्षित
जनवरी २००३

डा० हरिओम
सी.सी.एस. हरियाणा कषि विश्वविद्यालय
धान अनुसंधान केन्द्र
कौल 136021 हरियाणा

राधास्वामी सत्संग ताराधाम
(कैथल)

विषय - वस्तु

क्रम सं.	विषय	पष्ठ सं.
1.	स्वर्ग का साम्राज्य	
2.	ईसाह मसीह होने का अर्थ	
3.	मसीहा से मिलन	
4.	सद्‌गुरू का व्यवहार	
5.	शिष्य की पूर्णता	

राधास्वामी।

राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय।।

राधास्वामी।।।

समर्पित

राधास्वामी दयाल परम् संत

सद्‌गुरू ताराचन्द जी महाराज

के चरण कमलों में।

स्वर्ग का साम्राज्य

The disciples said to Jesus:
Tell us what the kingdom of heaven is like.
He said to them:
It is like a mustard seed-
smaller than all seeds,
but when it falls on the tilled earth
it produces a large tree
and becomes shelter for all the birds of heaven.

शिष्यों ने मसीह से पूछा:
बताओ हमें कैसा है स्वर्ग का साम्राज्य?
मसीह ने कहा:
यह एक सरसों के बीज की तरह है -
सब बीजों से छोटा बीज,
परन्तु जब यह तैयार भूमि पर गिरता है,
इसमें से एक बहुत बड़ा पेड़ निकलता है,
आकाश के जितने भी पक्षी
उन सभी का यह आश्रय बनता है।

ईसा मसीह ईसाई धर्म के जनक हुए हैं। उनका जन्म आज से लगभग २००० वर्ष पहले बैथलेहम (इस्राईल) में रहने वाले एक यहुदी परिवार में हुआ। उनके पिता एक बढ़ई का कार्य करते थे। ईसा मसीह के 12 शिष्य मुख्य थे जो सदा उनके साथ रहते थे। उनमें से पीटर और मैथ्यू

के अतिरिक्त थामस भी थे। ये 21 कहावतें थामस द्वारा लिखी गई हैं जो संत मत का भेद खोलती हैं और ईसा मसीह के आध्यात्मिक विचारों का दर्पण हैं। थामस की इन कहावतों को ईसाई धर्म का आधार नहीं बनाया गया क्योंकि उस समय का रूढ़ीवादी समाज जीसस के आध्यात्मिक विचारों को नहीं समझ पाया था। इसलिये जो बातें उन्हें अच्छी नहीं लगी उन्हें बाहर निकाल दिया गया। लेकिन थामस की ये कहावतें किसी तरह सुरक्षित रह सकी और कुदरत का नियामत से अपने समय पर यह रहस्य उजागर हुआ। यदि इन कहावतों को अंतरंग रूप से समझा जाये तो ये संत मत के बहुत निकट चली जाती हैं। ओशो की पुस्तक 'द मस्टर्ड सीड' में इन कहावतों का बहुत अच्छा वर्णन किया गया है। ओशो ने जिस स्तर की उर्जा को आन्दोलित किया है उस दष्टि से उनकी वर्णन शैली अतुलनीय है लेकिन जिस स्तर की उर्जा में सुरत - शब्द योगी जीता है उसकी जरूरतें कई मायनों में ओशो दर्शन से कतई मेल नहीं खाती हैं। उदाहरण के तौर पर उनका ये कहना कि अध्यात्म प्रयोजन शुन्य है, अर्थ शुन्य है, यह मनुष्य को रोजी-रोटी नहीं दे सकता। अध्यात्म मनुष्य को आनन्द प्रदान करता है, उसके अंदर के उस खाली स्थान को भरता है जो संसार की किसी भी दौलत से नहीं भरा जा सकता है। यह सत्य है कि अध्यात्म आत्मा की खुराक है, उसके खालीपन को भरता है लेकिन मेरा अनुभव कहता है कि यदि अध्यात्म आपको रोजी-रोटी नहीं दे सकता है तो वह अध्यात्म प्रयोजन शुन्य है, अर्थ शुन्य है। जहां अध्यात्म की एक किरण भी संचित हो जाती है वहां कुदरत की हर नियामत आपके कदमों में झुकने लगती है। मेरे सदगुरू राधास्वामी दयाल परम संत ताराचन्द जी महाराज कहते थे-

गुरूमुख की गति अति भारी। गुरूमुख कोटिन जीव उभारी।
गुरूमुख का जगत भिखारी।।

दूसरी बात ओशो कहते हैं कि गरीब व्यक्ति परमात्मा की अनुभूति

नहीं कर सकता है। आध्यात्मिक भविष्य यदि कहीं है तो वह अमेरीका जैसे देश में है, भारत जैसे गरीब देश का आध्यात्मिक भविष्य अंधकारमय है। संत मत इस बात से सहमत नहीं है। एक असुरक्षित और कष्टों से घिरा हुआ व्यक्ति आन्तरिक मन्थन की जिस ऊंचाई को छू सकता है उस ऊंचाई को प्राप्त करने की एक सुरक्षित और सोने के किले में बैठे व्यक्ति के लिए बहुत ही कम संभावना है। परमात्मा के प्रति जो प्रेम और समर्पण एक असुरक्षित व्यक्ति, जिसे केवल परमात्मा का आसरा नजर आता है, कर सकता है वह एक सुरक्षित व्यक्ति भला कैसे कर सकता है। एक गरीब व्यक्ति अपना सर्वस्व दाव पर लगा सकता है क्योंकि उसके पास खोने के लिये कुछ भी नहीं है, वह खतरों के साथ खेल सकता है वह जीवन को दाव पर लगा सकता है लेकिन एक अमीर व्यक्ति के लिए यह प्रायः असम्भव है। एक अमीर व्यक्ति बुद्धि की ऊंचाई पर स्वयं को स्थापित कर सकता है लेकिन आत्मिक गहराई प्राप्त करना इससे पूर्णतया भिन्न वस्तु है। ईसा मसीह कहते हैं कि एक ऊंट सूई के नाके से निकल सकता है लेकिन एक अमीर व्यक्ति परमात्मा के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकता है। अतः आत्मिक संसार में प्रवेश पाने के लिए एक अमीर व्यक्ति को अमीरी का अहंकार छोड़कर ही प्रवेश मिलता है।

तीसरी मुख्य बात ओशो कहते हैं कि मन को काबू में करने के लिये मन की इच्छाओं का चरम अवस्था तक भोग करो। उनसे बचो नहीं। साक्षी बनकर मन की गति को देखो और परीक्षण करो। मन शरीर की एक आणविक अवस्था है जो स्वयं में चेतन नहीं है बल्कि चेतना की धार से यह चेतन है, यंत्रवत कार्य करता है। जिस मार्ग पर इसको एक बार डाल दिया जाता है उसी पर जाने का प्रयत्न बार-बार यह करता है। एक बार तप्ति मिल जाए फिर दोबारा ओर अधिक शक्ति के साथ उसी कार्य को करने का प्रयास यह मन करता है। रोके नहीं रूकता है। फिर भी यदि यह मान लिया जाये कि एक इच्छा तप्त हो गई तो फिर मन दूसरी वस्तु की कामना

करने लगता है। इसकी कामनाओं का कोई अंत नहीं है। केवल आत्मिक संतुष्टि ही इसकी दिशा को मोड़ सकती है। आध्यात्मिक रूपान्तरण के बाद ही इसकी दिशा में परिवर्तन आ सकता है क्योंकि यह रूपान्तरण भौतिक रूपान्तरण नहीं है बल्कि आन्तरिक ब्रह्म अग्नि के द्वारा आलकैमीक रूपान्तरण है, हारमोनल बदलाव है। उससे पहले यह मन अपनी उड़ान भरता ही रहेगा। अपने चुने हुए रास्ते पर बार-बार दौड़ता रहेगा। यदि सुस्पष्ट और दढ़ आत्मिक रास्ता हमारे पास नहीं है तो हम इसे काबू में करने के लिए अनेक रास्तों की खोज करते रहते हैं लेकिन सफलता नहीं मिलती है क्योंकि यह बाहरी और थोपा गया (फोर्सड) नियंत्रण है।

चौथी बात ओशो कहते हैं कि पूर्वज संस्कार निरर्थक हैं इन्हें उखाड़ फैंको। कहते हैं कि मैं विरोध सिखाता हूँ। किसी भी व्यक्ति की आदत में जब विरोध की भावना प्रवेश करने लगती है तो ऐसा व्यक्ति हर बात पर उल्टा पड़ने लगता है, नकारात्मक होने लगता है। जब यह आदत थोड़ी बढ़ जाती है तो ऐसे व्यक्ति से बात करना भी कठिन हो जाता है। वह आत्मिक मण्डल में प्रवेश नहीं कर सकता है। वह अन्तविरोध के आभास और अन्तर में पनप रही हीन भावना से उभर नहीं पाता है। उसके अन्दर की चेतना के बहाव में रूकावट पड़ने लगती है जिसके परिणाम स्वरूप आत्मिक रूकावट ही नहीं बल्कि शरीर में असाध्य बिमारियां भी पनपने लगती हैं। पूर्वज संस्कार हमारे लिए एक अमूल्य धरोहर हैं लेकिन उनकी आड़ में अंधविश्वास का सहारा लेना आध्यात्म के लिए उतना ही खतरनाक भी है। मेरे सदगुरू कहते थे कि मां पथ्वी और पिता आकाश के सारे देवी-देवताओं से बड़े हैं। उनकी सेवा करने से ब्रह्माण्ड के सभी देवी-देवता प्रसन्न हो जाते हैं। वे कहते थे -

घर का शंकर(पिता) मरे पियासा बाहर करे जल धारा।
ऐसा पुत्र नरक का वासी महादुष्ट हत्यारा।।

माता-पिता की सेवा से मनुष्य के हृदय में प्रेम और विशालता की

भावना का संचार होने लगता है जो सुरत-शब्द योगी के लिए प्रथम सीढ़ी है। जिस व्यक्ति का अपने माता-पिता के प्रति समर्पण नहीं है वह सदगुरू के सामने क्या समर्पण कर सकेगा। ऐसा व्यक्ति संकुचित हृदय वाला होता है और उसके लिए आध्यात्मिक मार्ग सुलभ होना कठिन है। वे कहते थे कि जिस व्यक्ति ने माता-पिता की सच्चे मन से सेवा की है उस व्यक्ति के पास किसी चीज की कमी नहीं रह सकती है।

ये बातें लिखने का अर्थ यह नहीं कि ओशो अपने लक्ष्य में चूक गए हैं। उन्होंने चेतना के जिस आध्यात्मिक स्तर की भूख की पूर्ति की है वह हमेशा विस्मरणीय रहेगा। उसे एक दिशा प्रदान की है। समाज के एक बहुत बड़े वर्ग की लम्बे समय से यह मांग थी कि उसे ऐसा आध्यात्मिक मार्ग मिले जिसमें सांसारिक सुखों का त्याग भी न किया जाए और समाज का वह वर्ग आध्यात्मिक पूंजी से भी वंचित न रहे। इसलिये अत्यंत विरोध के बावजूद भी ओशो का आध्यात्मिक मार्ग शीघ्र ही समाज के एक बहुत बड़े वर्ग द्वारा स्पष्ट या दबे रूप में स्वीकार कर लिया गया। ओशो ने इस मार्ग को नाम दिया - जोरबा टू बुद्धा। जोरबा इन्द्रियों के आनन्द में डूबा हुआ व्यक्ति है जो बेहिचक उनका भोग करता है और खुशियां मनाता है लेकिन बुद्धा इन्द्रियों से विस्मत उस चेतना का नाम है जो स्वयं से भी बेखबर है और परमात्मा के आनन्द में स्वयं को भूल बैठी है। ओशो ने 'जोरबा टू बुद्धा' की इस यात्रा में अपार जीवन की सम्भावनाओं को जन्म दिया है लेकिन ऐसा आभास होता है कि उनके अनुयायी जोरबा के कैरेक्टर से ज्यादा प्रभावित हुए हैं। वे बुद्धा की अनुभूति को भूल गए हैं। ओशो के नाम पर अरबों-खरबों की सम्पति का अतुल भण्डार संचित किया जा रहा है। सम्पति के नाम पर आपसी मतभेद उभर रहे हैं। सर्व-विदित है कि आश्रम व्यवस्था का अन्तिम परिणाम यही होता है। हो सकता है एक समय पर यह व्यवस्था समाज के लिए नासूर बन जाए। देश-विदेश के जितने भी आश्रम हैं, धार्मिक संस्थाएं हैं या कम्यून हैं उन सभी में धन,बल और

राजनीति का यह प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

जीसस की इस कहावत के आरम्भ में ओशो के मार्ग के बारे में अति संक्षेप में इसलिये लिखा जा रहा है क्योंकि ये कहावतें उनकी पुस्तक 'द मर्स्टड सीड' से ली गई हैं यह पुस्तक मुझे बहुत अच्छी लगी लेकिन उन्होंने इन कहावतों का वर्णन अपने नजरिए से किया है। मैं उनकी वर्णन शैली, उनके ज्ञान और आंकलन कला के सामने स्वयं को तुच्छ स्थान पर खड़ा पाता हूँ लेकिन उनके दर्शन में आन्तरिक आत्मिक मार्ग का पूर्ण रूप से अभाव है। आकाश की बात की गई है लेकिन आकाश में चढ़ने के लिए सीढ़ी की व्यवस्था नहीं है। अतः संत मत के दष्टिकोण से इन कहावतों का वर्णन करने की आवश्यकता है। संतमत (सुरत-शब्द योग) बुद्धा की तरफ ले जाने वाले मार्ग को प्रसस्त करता है। मनुष्य को अन्तर्मुखी बनाता है और अंत में परम् संत की गति प्रदान करता है।

कहावत में जीसस से उनके शिष्य पूछते हैं -

The disciples said to Jesus:

Tell us what the kingdom of heaven is like.

एक बार ईसा मसीह अपने शिष्यों के साथ जा रहे थे। शिष्यों ने उनसे पूछा कि स्वर्ग का साम्राज्य कैसा होता है। ईसा मसीह ने फरमाया कि स्वर्ग का साम्राज्य एक सरसों के बीज की तरह से छोटा है, जो सारे बीजों से छोटा बीज है लेकिन जब यह बीज तैयार की गई भूमि के ऊपर पड़ता है तो ये बहुत बड़ा पेड़ (पौधा) बन जाता है। यह पेड़ इतना बड़ा होता है कि स्वर्ग के पक्षी, आसमान के जितने भी पक्षी हैं उनको इससे आसरा मिलता है, छाया मिलती है, सुख मिलता है - यह आज की कहावत है। इसमें ईसा मसीह ने बताया कि स्वर्ग का राज्य कैसा है? परमात्मा का राज्य कैसा होता है? स्वर्ग और नरक के ऊपर हमारे शास्त्र भरे पड़े हैं। इनके नाम पर बड़ी-बड़ी दुकाने चलती हैं, पैसे का व्यापार चल रहा है। बहुत से लोगों के लिए यह रोजी-रोटी का साधन है। नरक में जाने

का भय और स्वर्ग के प्राप्त न होने का भय सभी को खाए जा रहा है। सारे धर्म इस भय से भयभीत हैं। हिन्दू धर्म के साथ-२ इस्लाम धर्म और ईसाई धर्म भी भयभीत हैं। कि कयामत के दिन (Day of judgement) मनुष्य के कर्मो के अनुसार यह फैसला किया जाएगा कि किस व्यक्ति को स्वर्ग भेजा जाए और किसको नरक की दहकती हुई अग्नि में जलाया जाए। अतः स्वर्ग के राज्य में प्रवेश दिलाने के लिए बड़ी-२ संस्थाएं बन गई हैं जिनका जाल सारे संसार में फैला हुआ है। पूरा व्यवस्थित नैटवर्क कार्य कर रहा है। लाखों, अरबों डालर खर्च किए जा रहे हैं। प्यार से या रोटी दिखाने से मानते हैं तो ठीक है वरना जबरदस्ती स्वर्ग में या परमात्मा के राज्य में प्रवेश दिलाने के प्रयत्न किए जाते हैं। यदि फिर भी कोई नहीं मानता तो वह काफिर है, शैतान की औलाद है। अतः संसार की आज की परिस्थितियों में यह कहावत बहुत ही सार गर्भित है लेकिन कहावत का अर्थ करने से पहले कुछ बातों को समझना आवश्यक है।

मनुष्य के अन्दर मोटे तौर पर तीन स्तर पर उर्जा या शक्ति कार्य करती है - शारीरिक, मानसिक और आत्मिक। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं - स्थूल, सूक्ष्म और कारण या जागत, स्वप्न और सुषुप्ति। हम स्थूल या शारीरिक संसार में निवास करते हैं लेकिन यह स्थूल संसार सूक्ष्म या मानसिक संसार से लगातार प्रभावित होता रहता है और एक अवस्था से दूसरी अवस्था में बदलता रहता है। मन की वासनाओं और मानसिक विचारों ने मनुष्य को हमेशा प्रभावित किया है। बुद्धि से विकसित मनुष्य चाहे वह अंगहीन ही क्यों न हो उसने बलवान से बलवान व अल्पबुद्धि व्यक्तियों पर हमेशा राज किया है। हिंसक और खतरनाक जानवरों को अपने वश में किया है। इसलिए शरीर की शक्ति से मन की शक्ति अधिक होती है और मन की शक्ति से आत्मा की शक्ति अधिक होती है। जब मन की शक्ति को काबू में करके एकाग्र किया जाता है तो वही शक्ति अन्तर्मुखी बन जाती है, विचारातीत हो जाती है और प्रकाश का घेरा बनाकर अंतर में चक्कर काटने लगती है, फिर यह आत्मा कहलाती है। जिस

व्यक्ति ने अपने मन को इस अवस्था में पहुंचा दिया है वह प्रज्ञावान या प्राज्ञस्थित मनुष्य कहलाता है। वह मन में रहता हुआ भी मनातीत होता है। प्रकति के मण्डल में रहता हुआ भी प्रकति के तीन गुणों अर्थात् तमोगुण, रजोगुण और सतोगुण के प्रभाव से निर्लेप रहता है, वह गुणातीत कहलाता है। अर्थात् मन या मानसिक संसार की तरंगों से वह बहुत कम प्रभावित होता है। उसके मन की बैठक आत्मिक मण्डलों में बनी रहती है।

साधारण मनुष्य मन की इस ऊंचाई को नहीं छू पाता है और वह हमेशा मानसिक संसार में या प्रकति के सूक्ष्म मण्डल में चक्कर काटता रहता है। सूक्ष्म संसार सपनों का संसार है जहां मनुष्य आस्तिक होता हुआ भी आत्मा के रहस्यों से वंचित रहता है। मन के विस्तार को ही आत्मा की उपलब्धि समझता है। जबकि आत्मिक मण्डल मानसिक मण्डल के एकदम विरोधी अवस्था का नाम है जहां मन को अपने सम्पूर्ण विस्तार का शुन्य में समर्पण कर देना होता है। अतः आत्मिक मण्डल की आवश्यकताएं वे नहीं हैं जो मन में रहते हुए मनुष्य समझता रहता है और उनकी पूर्ति करता रहता है। इसलिए अनजाने ही वह ऐसा व्यवहार करता रहता है जो आत्मा की उन्नति के लिए घातक होता है, विरोधी होता है। जो मनुष्य स्थूल संसार में सबसे बड़ा आस्तिक कहलाता है सम्भव है वही मनुष्य आत्मिक संसार का सबसे बड़ा नास्तिक हो। ऐसा मनुष्य साधारण जीवों को अपने पाखण्डों और कर्मकाण्ड के जरीए काल की जंजीरों में जकड़ कर रखता है। उन्हें विधि-संस्कारों से बाहर नहीं निकलने देता है, अन्तर्मुखी नहीं होने देता है। आत्मा किसी विधि-संस्कार का नाम नहीं है। किसी बंधन, लगाव या दुराव का नाम नहीं है। वह किसी नाम, विचार या रूप में नहीं बंधती। वह विचारातीत, गुणातीत, भावातीत, मनातीत और कालातीत है अर्थात् इन सबसे परे है। विचार, भाव, नाम, रूप आदि सभी मानसिक संसार की धार हैं। यदि हम हिन्दू हैं तो हमारे स्वप्न में राम और कष्ण प्रकट होते हैं, यदि हम मुसलमान हैं तो हजरत मुहम्मद और यदि ईसाई

या सिक्ख हैं तो हमें जीसस और नानक के दर्शन होते हैं। किसी हिन्दू को हजरत मुहम्मद के या किसी मुसलमान को राम और कष्ण के दर्शन क्यों नहीं होते हैं? हमारे अन्दर जैसे संस्कार डाले गए हैं, जैसी शिक्षा दी गई है वही हमारे मन और बुद्धि का निर्माण करते हैं। अतः जहां तक रंग, रूप, नाम व रेखाएं हैं वहां तक मानसिक या सूक्ष्म संसार है। सुषुप्ति या कारण में जाकर सारे नाम और रूप विलीन हो जाते हैं, वहीं आत्मिक मण्डल है। वहां मन और सारी इन्द्रियां अपना-अपना संकल्प छोड़कर आत्मा के आनन्द में खो जाते हैं। न वहां राम का होश है न मुहम्मद का, न खुदा का न ही शैतान का, न दयाल का न काल का। उस अवस्था में रहते हुए क्या उस सुख के आनंद का वर्णन किया जा सकता है? कबीर साहब ने इसे उन्मुनी अवस्था कहकर वर्णन किया है। लेकिन मनुष्य जीने के लिए सारी उर्जा सुषुप्ति से ही तो खींचकर लाता है। प्रलय के समय सारी सुष्टि इसी सुषुप्ति या कारण मण्डल में जाकर समा जाती है और अपनी सारी उर्जा को ताजगी देकर पुनः अपनी रचना का सामान इकट्ठा करने लगती है। यही शास्त्रों का कथन है।

अवतारों के नाम पर, हजरत और मसीह के नाम पर, देवी-देवताओं और स्वर्ग-नरक के नाम पर समाज बंटता ही जा रहा है लेकिन यह मनुष्य की दरम्यानी अवस्था है, बीच की अवस्था है मानसिक संसार है जो मनुष्य के विकास में केवल बीच की एक सीढ़ी है, अन्तिम मंजिल नहीं। अन्तिम अवस्था के लिए आत्मिक मण्डल में प्रवेश करना होगा जहां किसी अवतार या मसीह के नाम पर भेदभाव नहीं है। इस मण्डल में प्रवेश करते ही मन में विद्यमान सभी रूप विलीन हो जाते हैं। वहां जाति-पाति, रंग-रूप का कोई अस्तित्व नहीं है। प्यार और केवल प्यार वहां का सिद्धांत है। जो धर्म उस प्यार को हानि पहुंचाता है, जो अवतार, हजरत या मसीह का नाम उस प्यार की बलि मांगता है और आपसी भेद-भाव पैदा करता है वह धर्म, अवतार या मसीह परम तत्व के लिए रूकावट है। आत्मा की उन्नति में

बाधक है। वास्तव में कोई अवतार या मसीह या संत-महात्मा मनुष्य के बीच नफरत पैदा करने नहीं आता है। यह तो मनुष्य है जो अपने स्वार्थ पूरे करने के लिए उनके नाम पर आपसी भेद-भाव खड़े करता है। मनुष्य को मनुष्य से लड़वाता है।

हर मनुष्य और धर्म का स्वर्ग भिन्न है क्योंकि स्वर्ग और नरक केवल मनुष्य के अपने विचारों का रोपण है। मानसिक अवस्था है। मन के अन्दर खड़ी की गई अच्छे या बुरे की एक तस्वीर है जो समय के अनुसार बदलती रहती है। जागत में मनुष्य जिस विचार या रूप को तपाता है, वही उसके स्वप्न में आने लगता है। स्वप्न में कामी व्यक्ति अपनी मन पसन्द कामिनी को खड़ी कर लेता है और जागत में जो इच्छा की पूर्ति नहीं होती मानसिक मण्डल या स्वप्न में आकर वह उसका भोग करता है। लालची व्यक्ति स्वप्न में पैसे को अपना इष्ट बनाकर उसके साथ खेलता है। इसी प्रकार एक हिन्दू जिसके मन के अन्दर जन्म से राम, कष्ण के विचार को पक्का किया गया है उसे स्वप्न में भी राम और कष्ण के दर्शन होते हैं। हजरत मुहम्मद के नहीं। इसी प्रकार एक मुसलमान, ईसाई या किसी दूसरे धर्म के व्यक्ति के साथ होता है। अतः मनुष्य का स्वर्ग और नरक वह मानसिक अवस्था है जिसमें वह उस वस्तु की कल्पना या इच्छा करता है जो उसे स्थूल रूप में प्राप्त नहीं होती या प्राप्त करने में कठिनाई होती है।

The disciples said to Jesus:
Tell us what the kingdom of heaven is like.

शिष्यों ने हजरत मसीह से पूछा कि स्वर्ग का राज्य कैसा होता है? वे जानना चाहते थे कि उसमें जीवन कैसा है? उसका अनुभव कैसा है और उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है? उससे मनुष्य को सुख कैसे मिलता है? जिनका उत्तर ईसा मसीह ने इस कहावत में दिया है। ईसाई धर्म में

परमात्मा और उसके स्वर्ग के बारे में एक कहानी प्रचलित है। इस कथा के अनुसार परमात्मा ऐसे स्थान पर रहता है जहां हर प्रकार का सुख मौजूद है। वहां किसी प्रकार का दुःख नहीं है उस स्थान को ईडन गार्डन कहा जाता है। वहां परमात्मा ने अपने ही रूप और गुणों वाला एक मनुष्य या आदम पैदा किया और उससे कहा कि तू मेरी तरह आजाद है, मुझमें और तुझमें कोई अन्तर नहीं है। तू इस बाग में रहकर मेरे समान सभी सुखों का आनन्द प्राप्त कर। यह मेरा स्वर्ग और मैं यहां का स्वामी हूँ। मैं तेरा पिता हूँ और तू मेरा पुत्र है। बाद में यही आदम आदमी का पूर्वज कहलाया जिसमें से सारी आदम जात या मनुष्य जाति का जन्म हुआ।

परमात्मा ने आदम को सब तरह से आजादी दी लेकिन उस पर एक बंधन लगा दिया। उसे चेतावनी दी कि इस बाग में एक ज्ञान का वक्ष (ट्री आफ नालेज) है तू उस वक्ष के फल को मत खाना। इसलिए इसाई धर्म में मनुष्य के लिए ज्ञान प्राप्त करना, ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें पढ़ना और उन पर आचरण करना मनुष्य के लिए हानिकारक कहा गया है। इसी कारण इस धर्म में अनेक वैज्ञानिकों को धर्म से बहिस्कत कर दिया गया। उन्हें सताया गया, मार डाला गया। उनके साहित्य को जला दिया गया। उन्हें शैतान का प्रतिनिधि कहा गया क्योंकि शैतान जो उसी बाग में रहता था वह आदम को बहकाने लगा कि इस फल में विशेष स्वाद है, विशेष आनन्द है जिससे परमात्मा तुझे वंचित रखना चाहता है। इस फल के खाने से तू परमात्मा की तरह अमर हो जाएगा। लेकिन वह नहीं चाहता कि तू इस अमत्व को प्राप्त करे। परिणाम स्वरूप आदम के अन्दर इच्छा जागने लगी और जब एक इच्छा जागती है तो वह दूसरी इच्छओं को भी जगाने लगती है और मनुष्य के चारों तरफ वासनाओं का जाल बनता चला जाता है। चाहत के इसी जाल को शंकराचार्य ने माया कहा है और बुद्ध ने इसे वासना या तष्णा का नाम दिया है। यही जाल ज्ञान का वक्ष है जिसे हिन्दू शास्त्रों ने अश्वत्था वक्ष कहा है जिसकी जड़ें आाकश में हैं और शाखाएं

नीचे की तरफ हैं और इसके विस्तार का कोई अन्त नहीं है। जब मनुष्य इस अश्वत्था वक्ष की जड़ों को काट देता है वह तभी बह्म के साक्षातकार के योग्य हो पाता है। परमात्मा के राज्य में प्रवेश करने के योग्य हो पाता है। फिर वह आदम की तरह अकेला रह जाता है क्योंकि वहां दो का भाव या विचार नहीं है, द्वैत नहीं है। कोई चाहत नहीं है। सब जगह एक ही आत्मा नजर आती है।

इको ब्रह्म द्वितीय नास्ति।

वह ब्रह्म या परमात्मा का रूप बन जाता है। उसमें और ब्रह्म में भेद नहीं रह जाता है। फिर शैतान उसे बहका नहीं सकता। ईसा मसीह उसी आदम का रूप है जिन्होंने ज्ञान के वक्ष की जड़ों को काट दिया है। और पुनः आदम के आदि स्वरूप को प्राप्त कर लिया है।

शैतान के बहकावे पर आदम के अन्दर इच्छा फुरने लगी। उसका मन उस पेड़ के फल को खाने के लिए लालायित होने लगा। जिस चीज के लिए मना किया जाता है उसे देखने या खाने की इच्छा मनुष्य के अन्दर कुदरती ही जागने लगती है। उसके अन्दर दिमाग में एक रूकावट पड़ जाती है । रहस्य का पर्दा पड़ जाता है जिसके बारे में जानने के लिए वह उत्सुक होने लगता है। सोचता-सोचता फिर वहीं आकर अटक जाता है। वह खुद के अन्दर ही दो भागों में बंट जाता है। स्वयं को ही दो जगह खड़ा कर लेता है। अपने अन्दर एक बाड़ खड़ी कर देता है जिसमें बाहर भी वही है और अन्दर भी। बाहर वाला मन अन्दर झांकने लगता है और अन्दर वाला मन बाहर क्योंकि दोनों हिस्से वास्तव में एक ही हैं। यदि किसी मनुष्य को कहा जाए कि इस घर में रहना लेकिन इस कमरे में नहीं झांकना। उस कमरे में कुछ नहीं है लेकिन मन के अन्दर एक रहस्य की गांठ पड़ गई है और जब तक वह गांठ नहीं खुलेगी तब तक वह व्यक्ति दबी नजर या दबी जुबान से यह जानने का प्रयत्न करता रहेगा कि इस कमरे में ऐसा क्या छिपा रखा है जिसके लिए उसे मना किया गया है । वह

व्यक्ति स्वयं के अन्दर ही बंट जाता है।

शैतान के बहकावे में आकर आदम के अन्दर इच्छा जागत हुई कि वह फल खाए। वह इच्छा उसके अन्दर धीरे-धीरे बढ़ने लगी और आकार धारण करने लगी। आदम का शरीर दो भागों में विभाजित हो गया। दूसरे भाग ने औरत का शरीर धारण किया जिसे इव व हवा का नाम दिया गया। अब शैतान ने हवा को बहकाना शुरू कर दिया। उसके लिए हवा को बहकाना आसान हो गया क्योंकि हवा का शरीर आदम की इच्छा या वासना से बना था। वासना का स्वभाव चंचल होता है उसका काम मन को विस्तार देना है। वह आदम की शक्ति बनकर प्रकट हुई क्योंकि विस्तार या फैलाव का जो भी कार्य होता है वह शक्ति के द्वारा ही सम्भव होता है इसीलिए उसे शक्ति, माया या प्रकति कहा गया है जो शिव, ब्रह्म या पुरूष के कार्य को अंजाम देती है। उसे मंजिल तक पहुंचाती है।

हवा शैतान की बात से सहमत हो गई। उसने आदम को भी मना लिया और दोनों ने मिलकर वह फल खा लिया अर्थात् उनके अन्दर जो इच्छा पैदा हुई थी उन्होंने उसका भोग कर लिया। ज्ञान का वक्ष क्या है? जब बच्चा गर्भ से बाहर आता है तो शुरू-२ में वह 24 घंटे में से 20-22 घंटे तक सोता रहता है। दूध पीता है और सो जाता है। लेकिन ज्यों-ज्यों वह बड़ा होने लगता है उसे भूख-प्यास, सर्दी, गर्मी आदि का अनुभव होने लगता है और उसे सुख और दुःख का ज्ञान भी होने लगता है। फिर वह इन्द्रियों में आने लगता है और उसकी इच्छा इन्द्रियों के बारे में जानने और उनका भोग करने की होने लगती है। यह है ज्ञान का वक्ष और उसका फल खाना। इस कार्य में मन शैतान का कार्य करता है जो मनुष्य को इन्द्रियों का भोग करने के लिए उकसाता रहता है।

आदम और हवा ने ज्ञान के वक्ष का फल खा लिया। फल खाते ही उन्हें लगा कि उनसे गल्ती हो गई है उन्होंने परमात्मा के हुक्म को तोड़ा है। उन्हें पश्चातम हुआ कि शैतान ने उनके साथ धोखा किया है।

इसलिए ईसाई धर्म में गुनाहों के लिए पश्चाताप का विशेष महत्व है। कहा गया है - Repent and the kingdom of heaven is at hand अर्थात् पश्चाताप करो और स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर जाओ। आदम और हवा पश्चाताप करने के लिए अपनी इन्द्रियों को अपने हाथों और पत्तियों से ढ़ककर खुदा के पास गए। खुदा ने देखते ही जान लिया कि इन्होंने ज्ञान के वक्ष का फल चख लिया है। खुदा ने आदम और हवा को इस पाप के लिए स्वर्ग से गिरा दिया, बाहर निकाल दिया। बहिष्कार कर दिया कि जाओ पहले अपनी शुद्धि करके आओ, फिर मेरे पास आना। यह है ईसाईयों के स्वर्ग की रूप रेखा जिसमें परमात्मा के अतिरिक्त आदम है, हवा है, ज्ञान का वक्ष और शैतान है। जैसा कि पहले बताया गया है कि आकार, रंग-रूप या आकत्तियों से बनाई गई जो भी पहचान है वह मानसिक संसार की देन है। हमारे पूर्वजों के मन की कल्पनाओं का परिणाम है। आत्मिक संसार में जाते ही मानसिक आकतियां और विकतियां सभी समाप्त हो जाती हैं, उसमें विलीन हो जाती हैं।

हमारी जो सभ्यता का विकास है, मनुष्य ने कैसे कैसे विकास किया उसके बारे में इतिहासकार बताते हैं कि पहले मनुष्य जंगलों में रहता था और पशुओं की तरह व्यवहार करता था। ज्यों-२ उसका मन और बुद्धि विकसित हुए वह समाज बनाने लगा और एक-दूसरे के सुख-दुःख में शामिल होने लगा। तभी से मनुष्य की बैठक दो जगह रही है। एक तो आदमी ने शुरू से शक्ति या ताकत को पहचाना है। जैसे गांव में कोई ताकतवर आदमी हो तो उसके पास जाकर बैठते हैं कि वह आदमी शरीर से तकड़ा है, इसके पास शारीरिक ताकत है। यदि जरूरत हुई तो यह व्यक्ति हमारी मदद कर सकता है और दुश्मन से हमारी सुरक्षा भी कर सकता है। इसलिए ताकतवर के पास आदमी बैठता रहा है, आज भी बैठता है। वह आज भी यह देखता है कि कौन राजनीतिज्ञ ताकतवर है, उसके बिना मेरा काम नहीं चलेगा। दूसरा आदमी का मन है। मन अपनी

मनवाता है। एक बैठक ताकतवर के पास रही है तो दूसरी पुरोहित के पास रही है जिसे वह अपना हितचिन्तक मानता है, गुरू मानता है और उसकी बातों का आदर करता है। मनुष्य ने हमेशा ऐसे आदमी के पास भी बैठना चाहा जहां कोई उसके मन की प्यास बुझा सके। उसके दुःख-दर्द को बांट सके। हम कहीं दुःखी हुए जाते हैं, किसी के पास बैठकर उसे अपने दुःख की बातें बताते हैं। क्यों बताते हैं? ताकि जो अन्दर के बेकली और दर्द हैं वह कम हो जाए और हमें शांति मिल जाये।

एक तो मन की भूख हमेशा रही है दूसरी शरीर की भूख यानि ताकतवर बनने की या ताकतवर आदमी के साथ रहने की भूख हमेशा रही है। हर आदमी की जरूरत होती हैं ये। जो ताकतवर आदमी था वह कुछ समय के बाद राजा कहलाया और जहां व्यक्ति को मन का सुख मिलता था वह पुरोहित, धर्मगुरू, पंडित या पादरी कहलाया जहां से धर्म उभरने लगा। ये दोनो चीजें सभ्यता के शुरू से लेकर आज तक हमेशा साथ-२ चली हैं। इन दोनों के बीच में अर्थात् धर्म और राज्य के बीच में हमेशा खुले रूप से या दबे रूप से एक संघर्ष चला है। कभी धर्म ने राजा को दबाने की कोशिश की है तो कभी राजा ने धर्म को अपना गुलाम बनाने का प्रयत्न किया है। यह हमेशा चलता रहा है। यानि मन की ताकत ने शरीर की ताकत को और शरीर की ताकत ने मन की ताकत को दबाने की कोशिश की है। जब कोई मन का ताकतवर आदमी आया जिसको ज्ञान ज्यादा हुआ उसने राजा को दबाने का प्रयत्न किया। कभी-२ जब ज्ञान कम हो जाता है, पेट के पुजारी रह जाते हैं, हवन-यज्ञ करके अपना और अपने परिवार का पेट पालते हैं। जब खुद की कमाई नहीं रहती, आत्मा की कमाई नहीं रहती तो आदमी कमजोर होने लग जाता है फिर वह सहारे और अपनी सुरक्षा के लिए उसके पास जाता है जो शरीर से ताकतवर है। कहने का अर्थ यह है कि पुरोहित या धर्मगुरू राजाओं के दरबार में जाने लग जाते हैं, सहारा ढूंढने लग जाते हैं। उस समय में धर्म की हानि होती है। अर्थात्

जब व्यक्ति मन से या ज्ञान से बलवान नहीं रहता है, आत्मा से कमजोर हो जाता है तो उसे शरीर की ताकत की जरूरत पड़ती है जहां से उसकी पूर्ति होती है।

ईसाई धर्म का इतिहास बताता है कि धर्म और राज्य का बहुत संघर्ष चला है। कभी-२ पोप या धर्माधिकारी ने स्वयं को राजा घोषित कर दिया या राजा के अधिकारों को छीनने का प्रयत्न किया तो कभी-२ राजा ने चर्च को राज्य की सम्पति बनाने का एलान किया और कहा कि उसके पास दैविक अधिकार (Divine rights) हैं और परमात्मा के राज्य का असली वारिश राजा ही है। राजा और धर्म के इस संघर्ष को दो तलवारों का सिद्धांत (Doctrine of two swords) कहा गया है।

स्वर्ग के राज्य की जो तस्वीर यहुदी और ईसाइयों के पूर्वजों ने बनाई उसने खूनी संघर्ष को जन्म दिया उसमें कभी जीत राजनीति की हुई तो कभी चर्च की। लेकिन किसी को परमात्मा के राज्य में प्रवेश मिला या नहीं इसका किसी के पास कोई प्रमाण नहीं है। मन के स्तर से निकला हुआ कोई भी विचार, रंग, रूप या आकति हो, निश्चित तौर पर उसका विरोधी स्वरूप भी मन के अन्दर मौजूद होता है। इसलिए मानसिक स्तर से संघर्ष का जन्म होना लाजमी है, जरूरी है। जब मन की बैठक आत्मिक मण्डल में हो जाती है तो सभी संघर्ष समाप्त होने लगते हैं। विश्वास हो जाता है कि मानसिक स्तर से पैदा होने वाली सभी धारणाएं केवल एक भ्रम हैं। सत्य तक पहुंचने के लिए केवल एक दरम्यानी अवस्था है।

हिन्दू धर्म में स्वर्ग क्या है? मुस्लिम धर्म में स्वर्ग (बहिस्त) क्या है? उनका स्वरूप भी अलग है। हिन्दू धर्म में तो स्वर्ग में परियों की कामना की जाती है। वहां की शराब को भी सोमरस कहा जाता है। वहां कल्प वक्ष है, कामधेनू गाय है। वहां जिस चीज की इच्छा की जाती है वही हाजिर हो जाती है। एक अच्छे स्वप्न की पूरी कल्पनाओं को मिला दिया जाए तो वह हिन्दुओं का स्वर्ग बन जाता है। ऋषि-मुनी स्वर्ग की प्राप्ति

के लिए तपस्याएं करते हैं, अपनी इन्द्रियों को सुखाते हैं ताकि स्वर्ग की प्राप्ति हो सके और स्वर्ग में परियों की कामना की जाती है। जिस इच्छा को स्थूल में दबाया जा रहा है वह स्वप्न में खड़ी हो जाती है, इसलिए ऋषि मुनियों को परियों ने हमेशा सताया है। उनकी तपस्या को बार-बार भंग किया है। इन्द्री को जब अनुचित तरीके से दबाया गया तो वही इन्द्र बनकर प्रकट हो गई और उसने स्वप्न में या सूक्ष्म में अपना पूरा साम्राज्य बना डाला और हर तरह की वासना को शांत करने के काल्पनिक साधन पलक झपकते ही पैदा कर दिए।

मुस्लिम धर्म के स्वर्ग में सुन्दर-२ लड़कों की भी कामना की गई है। इस धर्म के फकीर महात्माओं ने बहुत संयम का जीवन जीया है। उनके निर्देश बहुत कठिन थे। सुंदर औरतों के अतिरिक्त सुन्दर लौंडों की तरफ देखना भी पाप माना गया है। एक कहानी आती है इब्राहिम अद्धम की। इब्राहिम अद्धम बलख के बादशाह थे। वे इस्लाम धर्म के स्तंभ माने जाते हैं। उन्होंने ही मक्का में काबा की स्थापना की थी। वे बादशाही छोड़कर खुदा के रास्ते पर चल पड़े। घर बार और राजपाट छोड़कर चले गए। अरब देशों में बड़े-२ रेतीले मैदान होते हैं जहां सूफी महात्मा तपस्या करते थे। यहां ऐसे-२ दुर्गम स्थान थे जहां जीवन बहुत कठिन था। यहां खाने के लिए कुछ नहीं होता था तथा इन्हें शैतान की भूमि कहा जाता था। यहां तपस्या करके फकीर शैतानी ताकतों से अपना लोहा मनवाते थे। जो इन पर विजय प्राप्त कर लेता था वह ऊँचे दर्जे का फकीर कहलाता था। वे महात्मा बहुत कठिन जीवन व्यतीत करते थे।

कहते हैं एक बार इब्राहिम अद्धम ने अपने साथ रहने वाले साधू-महात्माओं को निर्देश दिया कि कोई भी फकीर इबादत के लिए आने वाली औरतों और बच्चों की तरफ नजरें उठा कर नहीं देखेगा। अगले दिन जब साध-संगत आई तो उनमें इब्राहिम अद्धम की पत्नी और बेटा भी आए हुए थे। जब आमना-सामना हुआ तो दिल में प्रेम झाल मारने लगा। दिल

ने दिल को पुकारा, भावना जागत हुई तो रहा न गया। नजरें उठ गई, आंखें आसुंओं से भर आई क्योंकि पुत्र और पत्नी से मिले बहुत दिन हो गए थे। अंदर में तड़फ थी मिलने की, छिपी हुई इच्छा थी जो जागत हुई। नजर भर कर देखा, लड़के ने भी नजर भरकर देखा। उठकर भागकर अपने लड़के को छाती से लगा लिया। पुत्र और पिता लिपटकर रोने लगे, पत्नी भी प्रेम को छिपा न सकी। जब बेटे को छाती से लगाकर रो रहे थे तो अचानक बेटा हाथों से छूट गया और जमीन पर गिर गया। पुत्र की मत्यू हो गई। सभी ने जब इसका कारण पूछा तो इब्राहिम अद्धम ने बताया कि जब वे अपने पुत्र से प्रेम में आकर लिपटे हुए थे तो ऊपर से खुदा की आवाज आई कि ए अहशानफरोश! दोस्ती का वादा हमसे और यारी दुनियां के साथ। तभी अन्दर से ज्ञान जागत हुआ, तो हृदय से स्वयं ही एक प्रार्थना निकली कि हे खुदा! मुझसे गल्ती हो गई है, मुझे माफ कर दे। मेरे बच्चे को उठा ले या मुझे इस दुनियां से रूकसत कर दे। मैंने तेरे साथ दगा किया है। इसलिए मेरे खुदा दोनों में से एक को मौत का फरमान दे। चुनाचे वह दुआ पुत्र के हक में कबूल हुई और वह जमीन पर ढेर हो गया।

हर धर्म में स्वर्ग का रूप अलग है। तो स्वर्ग क्या हुआ? संत मत कहता है कि स्वर्ग-नरक कल्पनाओं का एक संसार है, मानसिक संसार है। इसकी कोई सीमा नहीं है। स्वप्न में हम कहां से कहां चले जाते हैं लेकिन जागने पर वहीं के वहीं होते हैं। सुरत-शब्द योग कहता है कि इससे बाहर निकल जाओ। ये सब नीचे की अवस्थाएं हैं, नीचे की हालत हैं। इससे बाहर निकलकर आत्मा के संसार में चले जाओ जहां कोई विचार नहीं है, केवल नूर ही नूर है। गुरूवाणी कहती है -

इक नूर ते सब जग उपजया।

इसलिए संतमत जोर देता है कि देवी-देवताओं के संसार से बाहर निकलो। स्वर्ग-नरक के संसार को छोड़कर आगे बढ़ो। इसको देखो लेकिन इसमें फंसो मत। लेकिन जब तक व्यक्ति को इसका अनुभव नहीं

होता तब तक वह इस मानसिक भंवर में फंसता चला जाता है और जगह-२ भटकता रहता है। जिसने जीते जी स्वर्ग को अनुभव नहीं किया उसे मरने के बाद स्वर्ग नहीं मिल सकता है। जिसने अपने जीवन में नरक(दोजख) का जीवन बिताया है उसके लिये बाद में भी नरक है। जैसा विचार जीवन भर तपाया गया है और जीवन में जीया गया है वही विचार मरने के बाद भी आत्मा के अन्दर बीज की तरह सूक्ष्म संस्कार बनकर मौजूद रहता है और अगले जन्म का कारण बनता है। जो व्यक्ति जागति में भटकता रहता है वह स्वप्न में भी उसी तरह भटकता रहता है। जागति में भय समा गया है तो स्वप्न में भी व्यक्ति भयभीत रहता है और सोता-२ चिल्लाने लगता है। इसलिये राधास्वामी योग कहता है कि मनुष्य को करणी करके ६ यान-भजन के द्वारा इस संसार में रहते हुए उंचा उठना है। यहीं उस आत्मा के साथ मिलाप करना है। यहीं रहते हुए उस परमात्मा के सुख को अनुभव करना है, परमात्मा के साम्राज्य को अन्तर में देखना है, महसूस करना है। मरने के बाद किसने स्वर्ग देखा है? ये बहकाने वाली बातें हैं जो पुरोहित हमेशा से करते आए हैं और लोगों को लूटते आए हैं परमात्मा का प्रतिनिधि बनकर। कभी कोई महात्मा बुद्ध आ गया तो उसने सच्ची बात बता दी। कोई शंकराचार्य आ गया, कोई कबीर साहिब आ गए तो सच्ची बात बता दी लेकिन उनके जाने के बाद फिर भ्रम का जाल फैलने लगता है और दुनियां बाहरमुखी होने लगती है।

The disciples said to Jesus.
Tell us what the kingdom of heaven is like.
He said to them:
It is like a mustard seed -
smaller than all seeds

जीसस ने कहा कि स्वर्ग का साम्राज्य सरसों के बीज की तरह है जो सब बीज़ों से छोटा बीज है। उन्होंने यह नहीं कहा कि वह ऐसा स्थान है जहां परमात्मा अपने पुत्र आदम के साथ रहता था। वहां एक ज्ञान का वक्ष था। शैतान था। उनका उत्तर व्यावहारिक था जिसे शिष्य अपने अनुभव और अपनी भाषा में समझ सकते थे। महात्मा गांधी से जब कोई पूछता कि भगवान क्या है, वे कहते कि सच्चाई ही भगवान है। ट्रुथ इज गाड। उन्होंने ये नहीं कहा कि गाड इज द ट्रुथ, भगवान का नाम ही सत्य है। उन्होंने कहा - सत्य ही भगवान है। उन्होंने वह रास्ता बताया जिसके साथ हम दिन-रात जुड़े हुए हैं, जो दिखाई देता है। स्वर्ग का परमात्मा किसी को दिखाई नहीं देता। यदि किसी मनुष्य को एक रूप में दिखाई भी देता है; साधक ने जिन गुणों को लेकर अपने भगवान की कल्पना की है, वह उसी रूप में दिखाई देने लग जाता है। रामकष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द ने काली मां को जगत माता माना, ममता और प्रेम की देवी माना। उनके सामने वह उसी रूप में प्रकट हुई। उसे सत्य का प्रकाश फैलाने वाली शक्ति माना, उनके हृदय में वह वही संदेश लेकर प्रकट हुई। लेकिन डाकू और बहुत से दूसरे लोग उसी देवी को हिंसा और युद्ध की देवी मानते हैं और उसके ऊपर पशुओं और यहां तक बच्चों की बलि भी चढ़ा देते हैं ताकि माता खुश हो जाए। उनके लिए वही देवी हिंसक शक्ति बनकर प्रकट हो जाती है। अर्थात् हमने अपने इष्ट या भगवान के अन्दर अपने ख्याल में जैसे रूप और गुणों की कल्पना की है और उसी कल्पना को मन में चढ़ाकर उसकी भक्ति की है, हमारे मन की चेतना वही रूप लेकर उभरने लगती है और प्रकट होने लगती है, हमसे बातें करने लगती है। यहां तक हमें भविष्य की घटनाओं के बारे में संकेत देने लगती है। साधक भगवान के इसी रूप को सत्य के दर्शन मानता है लेकिन यह पूर्ण तौर पर मानसिक अवस्था है, अधूरी तपस्या है। दरम्यानी अवस्था है। भगवान का सूक्ष्म (नूरी) और कारण (अनहद नाद, वर्ड या कलाम) रूप अभी

बाकी है। इसी अवस्था का लाभ उठाते हुए लोग भविष्यवक्ता बन जाते हैं, सेवड़े और बुझागर बनकर लोगें के भोलेपन को अपनी कमाई का साधन बना लेते हैं।

गांधी जी कहते हैं कि सत्य ही परमात्मा है। उन्होंने वह रास्ता बताया जो व्यक्ति की पकड़ में है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि दरिद्र की सेवा और सहायता करने में दरिद्रनारायण के दर्शन हो सकते हैं। यदि परमात्मा गरीब और दीन-दुखियों की मदद नहीं कर सकता तो वह परमात्मा हमारे किस काम का है। मेरे सदगुरू कहते हैं कि प्रेम के द्वारा ही परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है। ओशो प्रेम को ही परमात्मा कहते हैं। राधास्वामी पंथ के संत महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज के अनुसार कर्म के साथ योग करना परमात्मा के साथ योग है। कर्म ही परमात्मा है। कर्म जब उपासना बन जाता है, पूजा बन जाता है तो उससे ज्ञान उत्पन्न होता है और ब्रह्म की प्राप्ति होती है। श्री अरविन्द कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों की पूर्णता में परमात्मा की प्राप्ति मानते हैं। गीता में भी श्री अरविन्द की तरह परम् तत्व वासुदेव के पुरूषोतम रूप के दर्शन करने के लिए कर्म को आधार माना गया है। सभी महात्माओं ने अपने अनुभव के अनुसार परमात्मा तक पहुंचने का रास्ता बताया है।

ईसा मसीह संकेत में बता रहे हैं कि परमात्मा का साम्राज्य एक सरसों के बीज की तरह है। यह एक रहस्य की बात है। कितने अचरज की बात है कि परमात्मा का साम्राज्य और वह भी सरसों के बीज जितना छोटा बीज। ईसा मसीह फिर कहते हैं कि स्वर्ग का राज्य तुम्हारे अन्दर है (The kingdom of heaven is within you) यह राज्य मनुष्य के अन्दर मौजूद है, वह भी एक बीज के रूप में जो सबसे छोटा बीज है। अविकसित अवस्था में पड़ा हुआ है। मनुष्य के अन्दर अच्छाई का बीज भी है और बुराई के बीज भी अधिकता के साथ मौजूद हैं क्योंकि मनुष्य प्रत्यक्ष रूप से इंद्रियों के साथ रहता है। उनका पोषण करता है और भोग

करता है। अच्छाई के बीज को पहचानने के लिए उसे इन्द्रियों से हटकर अपने अन्दर में झांकना होगा। अच्छाई का बीज इन्द्रियों का विषय नहीं है। इन्द्रियां नजर आती हैं लेकिन वह ऐसा बीज है जो नजर नहीं आता। कभी-२ जब हम अन्तर्मुखी होते हैं तो वह अपने सुख और आनन्द का केवल अहसास करवाता है इसलिये वह सब बीजों से छोटा बीज है। जिसकी पहचान करना कठिन है। यदि पहचान हो भी जाए तो उसके जमने के लिए भूमि तैयार करना और उसका पालन-पोषण करना ओर भी कठिन है क्योंकि बुराई के बीज बार-बार उसे ढक लेते हैं, उसे मिलने वाली खुराक को बंद कर देते हैं। इन्द्रियों के भोग और अविवेक उसके पनपने के रास्ते में रूकावट बन जाते हैं।

जीसस कहते हैं कि स्वर्ग का साम्राज्य सरसों के बीज की तरह है जो सब बीजों से छोटा बीज है। छोटा होने का क्या अर्थ है? मेरे सद्गुरू के दादा जी विश्वास के साथ कहा करते थे कि मेरे परिवार में एक संत आ चुका है, एक बहुत बड़ा संत ओर भी आएगा। एक विचार था, वह तो सरसों के बीज से भी बारीक था। लेकिन वह विचार धीरे-२ अंतर में तपने लगा और रूप व आकार लेने लगा। जब आदमी इतना ऊंचा विचार उठाता है तो उस विचार को कर्म में उतारने के लिए वह अपनी रहनी और करनी को भी मजबूत बनाता है। वह सदाचार और नियम की मजबूत जूती पहनकर चलता है। जब वह संत की कामना कर रहा है तो उसे संत जैसे गुणों को व्यवहार में लाना पड़ता है। ऊंचे ख्याल में रहना उसकी आवश्यकता बन जाती है। कहते हैं कि उनके दादा जी इतने उदार हृदय थे कि जब भैंस या गाय का बच्चा अपने खूंटे से खुलाकर अपनी मां का दूध पीने लगता तो वे उसे कभी नहीं हटाते थे। कहते थे कि अपनी मां का दूध ही तो पी रहा है। इसी तरह खेत में भी किसी पक्षी या पशु को बाहर नहीं निकालते थे। गरीबी इतनी थी कि खाने के लिए रोटी का प्रबंध भी कठिनाई से होता था।

उनके घर जो पुत्र पैदा हुआ बड़ा होकर डाकुओं का साथी हो गया। मेरे सदगुरू कहते थे कि वह हरफूल डाकू के साथ रहता था और लोगों को तंग करता था। जब महाराज का जन्म हुआ तो घर में खाने के लिए अनाज़ नहीं था। वे जब बड़े हुए तो उनके पिता उन्हें बहुत यातनाएं देते थे और उन्हें पीटते हुए पूछते थे कि बता परमात्मा कितनी बार हंसता है? एक बार उनके अत्याचारों से तंग आकर घरबार छोड़कर चले गये और अपने इष्ट देवता के सामने हट करते हुए प्रण किया कि जब तक मेरे पिता उस घर में हैं मैं उस घर में नहीं जाऊंगा। अन्न जल का त्याग कर दिया। कई दिन के बाद इष्ट देवता ने दर्शन देकर कहा कि तुम्हारा पिता आज से एक साल के बाद शरीर त्याग देगा। तब तक तुम उसकी सेवा करना, उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देना। वैसा ही हुआ - भविष्यवाणी के अनुसार उसी दिन उनके पिता की मत्यु गई। मेरे सद्गुरू मिट्टि में लिपटे हुए हीरे थे - **'मदयोलिप्तम सुधान्तम्'** थे लेकिन पिता और समाज की ज्यादतियों ने उन्हें चोट मार मार कर निखार दिया और छिपी हुई आध्यात्मिक चिंगारी को फूंक मार मार कर अग्नि और फिर ब्रह्म अग्नि बनने में बहुत मदद की। जो अविकसित बीज अंदर मौजूद था उसे विकसित करने और फलने फूलने में दादी ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। दादी जी बहुत ऊंचे विचारों वाली औरत थी जो कठिनाई और दुःख के समय उन्हें बड़े-बड़े संत-महात्माओं की कहानियाँ सुनाया करती थी। जो पौधा दादी ने आध्यात्मिक खुराक देकर विकसित किया उसे समाज और पिता के अत्याचारों ने काल के थपेड़ों के प्रति सहनशीलता, ज्ञान और जीवन का अनुभव प्रदान किया। वे स्वयं कहते थे कि दुःख और कठिनाईयां मनुष्य के मित्र होते हैं। दुःख मनुष्य को परमात्मा की याद दिलाते रहते हैं।

जब विचार बदल जाता है तो मनुष्य का रहन-सहन भी बदल जाता है। मनुष्य के अन्दर और बाहर का सारा वातावरण बदल जाता है।

उसका बात करने का तरीका बदल जाता है, उसकी हंसी और नजर का अर्थ बदल जाता है। विज्ञान कहता है कि मनुष्य जैसा सोचता है, हंसता है या रोता है उसके अंदर उसी तरह का स्राव निकलता है, हारमोन्स बनते हैं और जब व्यक्ति लगातार एक ही तरह के आन्तरिक वातावरण में जीता है तो उसकी आन्तरिक बनावट या इन्नर कंसटीटूयशन बदलता चला जाता है क्योंकि अन्दर का सारा सिस्टम इन्जाइम द्वारा नियंत्रित होता है। आगे चल कर वही बीज औलाद के अन्दर चला जाता है और वह स्थूल रूप में प्रकट हो जाता है, एक्सप्रेस हो जाता है। लेकिन आरम्भ में कितना छोटा होता है वह विचार, वह बीज कितना छोटा होता है? वह सूक्ष्म विचार रूपी बीज जब गर्भ में उतरता है तो मां का विचार भी उसे प्रभावित करता है। जब बच्चा गर्भ में आता है तो आरम्भ में वीर्य का छोटा सा दाना पड़ता है जो सूक्ष्म बीज का स्थूल रूप है और सभी स्थूल बीजों से छोटा बीज है।

सच्चाई का बीज इसलिए भी सबसे छोटा बीज है क्योंकि जब व्यक्ति सच्चाई के रास्ते पर चलता है तो लोग उसका मजाक उड़ाते हैं, व्यंग्य करते हैं। जबकि चालाक और दुष्ट आदमी तेज गति से आगे बढ़ते दिखाई देते हैं। सच्चे आदमी के रास्ते में पग-२ पर कठिनाईयां आती हैं। ऐसा व्यक्ति दीखने में सबको कमजोर लगता है, सरसों के बीज की तरह छोटा लगता है लेकिन उसके अन्दर जो सम्भावनाएं जन्म लेती हैं, जो विशालता और विश्वास हृदय के अन्दर घर बना रहे हैं वे किसी को नजर नहीं आ रहे हैं। स्वर्ग के साम्राज्य के अवतरण के लिए जो भूमि तैयार हो रही है वह किसी की पकड़ में नहीं आ रही है। स्वर्ग का साम्राज्य हर तरह की दौलत से इतना भरपूर है कि यदि मनुष्य थोड़ी सी सच्चाई के साथ भी अपने जीवन में डट जाता है तो वहां कुदरत की हर तरह की बरकत इकट्ठी होने लगती है। धन, धर्म, राजनीति , विज्ञान कोई भी सम्भावना वहीं पर वजूद में आई है जहां सच्चाई के बीज की पहचान की गई है और उसे जिन्दा किया गया है।

गुरू नानक सिक्ख धर्म के सबसे पहले गुरू थे। नानक साहब को उनके पिता ने कुछ पैसे दिए और कहा कि शहर में जाओ और सच्चा सौदा करके लाओ। उन्होंने कहा - हाँ पिता जी सच्चा सौदा करके आऊँगा। विचार तो लेकर चले थे कि पिता जी के कहे अनुसार सामान खरीद कर लाऊंगा लेकिन रास्ते में भूखे साधु मिल गये। उन्होंने झोली पसारी तो उनके दिल में दया भर आई क्योंकि संत दिल के मरीज होते हैं, उनसे रहा नहीं गया। सोचा कि इससे सच्चा सौदा क्या हो सकता है। मेरे पिता जी ने कहा था कि सच्चा सौदा करके आना। जो भी उनके पास था सारा साधुओं को दे दिया। आने के बाद पिता जी पूछने लगे कि बेटा सच्चा सौदा करके आए? कहने लगे कि हां पिता जी सच्चा सौदा करके आया हूँ। पिता जी ने जब सामान के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि वे ऐसा सौदा करके आए हैं जो जन्म-जन्मान्तरों तक बरकत देगा। फिर पिता जी ने उनको वहां से हटा कर दुकान पर बिठा दिया। किसी ग्राहक के लिए 15 सेर तोलने के लिए कहा। तोलना शुरू किया तो 13 पर जाकर अटक गए। जितनी बार तोलते उतनी ही बार तेरा (13) तेरा (13) बोलते गए। खुदा का रूप सामने आ गया कि तेरा, खुदा तेरा ही तेरा, स्वयं को भूल गए और दुकान का सारा अनाज ग्राहक की झोली में डाल दिया। यह है वह विचार रूपी सरसों का बीज जो सब बीजों से छोटा है।

प्रश्न उठता है कि क्या अच्छाई का बीज ही छोटा होता है? क्या बुराई का बीज छोटा नहीं होता है? बुराई का बीज भी उतना ही छोटा होता है। शायद उससे भी छोटा होता है। हिन्दू शास्त्रों में एक मिसाल आती है, स्वर्ग की ही मिसाल है। स्वर्ग के सारे देवी-देवताओं के गुरू बहस्पति को देवगुरू कहा जाता है। एक बार स्वर्ग के राजा इन्द्र और देवगुरू के बीच बहस छिड़ गई। इन्द्र अपने गुरू से कहने लगा कि मैं तुझसे बड़ा हूँ, मैं स्वर्ग का राजा हूँ। तू क्या है? तेरे पास एक कमण्डल के सिवाय कुछ नहीं है। सारा राज मुझसे चलता है। उधर बहस्पति कहने लगे कि मेरे

पास ज्ञान है, तप है जो तेरे पास नहीं है। राजा को जब कठिनाई के समय कोई रास्ता नहीं सूझता तो गुरू ही उसे नीति और शास्त्र के अनुसार रास्ता दिखाता है। उसका मार्ग दर्शन करता है। लेकिन इन्द्र उनसे सहमत नहीं हुए और उनके लिए अशोभनीय शब्द प्रयोग करने लगे। उनके सम्मान को ठेस पहुंचाने लगे। फैसला हुआ कि त्रिदेव के पास चलते हैं। ज्ञानमूर्ति ब्रह्मा के पास गए तो वे इन्द्र के व्यवहार से चिंतित हो उठे लेकिन कुछ न कह सके। फिर भक्ति की गरिमा रखने वाले विष्णु को पुकारा तो वे भी बात को टाल गए कि सच्चाई कहने से इन्द्र नाराज हो जायेंगे। फिर वे सभी शिव के पास गए तो शिव जी इन्द्र पर बहुत क्रोधित हुए। उनका तीसरा नेत्र खुल गया। इन्द्र उसकी अग्नि से जलने लगे। सारे देवता घबरा गए। इन्द्र माफी मांगने लगे। देवगुरू ब्रहस्पति के कहने पर शिव शांत हुए लेकिन कहने लगे कि उनका यह उग्र रूप किसी न किसी को नुकसान तो अवश्य पहुंचाएगा क्योंकि इन्द्र ने भारी अपराध किया है। उन्होंने उस उग्र रूप को जो तीसरा नेत्र खुलने से पैदा हुआ था, जिसमें अत्यंत तेज था उसे उतारकर समुंद्र में फैंक दिया। उस उग्र रूप से एक असुर का जन्म हुआ जिसका नाम जालन्धर था। भार्गव शुक्राचार्य ने अपने तपोबल से उसे ओर भी ताकतवर बना दिया। नीच कर्म के कारण पैदा हुआ बीज जो अब असुर जालन्धर के रूप में प्रकट हो चुका था इन्द्र को ललकारने लगा। जालन्धर इन्द्र और देवताओं के किसी भी हथियार से पराजित नहीं हो रहा था। समस्त देवी-देवता स्वर्ग को छोड़कर भाग खड़े हुए और भगवान विष्णु के पास जाकर त्राहिमान-त्राहिमान करने लगे। विष्णु कहने लगे कि इन्द्र ने अपने गुरू का अपमान किया है इसलिए उसे इसका परिणाम भुगतना होगा। लेकिन विष्णु ने उन्हें बताया कि जालन्धर की ताकत उसकी पतिव्रता पत्नी के कारण है। जब तक उसका पतिव्रत धर्म बरकरार है तब तक जालन्धर को कोई पराजित नहीं कर सकता है। उधर धीरे-२ असुर जालन्धर के अत्याचार बढ़ते ही जा रहे थे। रचना के

कार्य को आगे बढ़ाने में कठिनाई पैदा हो रही थी। अतः देवताओं और ब्रह्मा के बार-बार प्रार्थना करने पर विष्णु ने उनकी विनती स्वीकार की। जालन्धर की ताकत उसकी पत्नी के पतिव्रत धर्म में थी। औरत ताकत होती है आदमी की। जब वह शक्ति बनकर आ जाती है तो आदमी का कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता है। इसलिये विष्णु ने उसका पतिव्रत धर्म नष्ट करने की योजना बनाई। जब जालन्धर देवासुर संग्राम में गया हुआ था तो विष्णु ने जालन्धर का रूप धारण किया और उसकी पत्नी का पतिव्रत धर्म खण्डित कर दिया। उसके बाद असुर सम्राट जालन्धर की मत्यू हुई। यह है हमारे इन्द्र के स्वर्ग और त्रिदेव की तस्वीर जहां क्रोध उठता है तो असुर जालन्धर का जन्म होता है और जब उसे पराजित किया जाता है तो किसी का स्तीत्व भंग किया जाता है।

बुराई का बीज भी ताकतवर होता है लेकिन संत महात्मा कहते हैं कि अन्तिम जीत सच्चाई की होती है। बीज दोनों ही छोटे हैं लेकिन दोनों में एक मौलिक अंतर है। एक शिव है तो दूसरा शिव का मैल है। सच्चाई के बीज का जन्म आत्मा के अन्दर होता है। प्रेम और दीनता से होता है। जब व्यक्ति मन के अहंकार को प्रेम में खो देता है, आपे को परमात्मा के सुपुर्द कर देता है तब अंकुरित होता है वह बीज जो पूर्ण अस्तित्व से खुराक लेता है और फलता फूलता है। वह पूर्ण के लिए ही आता है और उसी में समा जाता है। उसमें स्वार्थ नहीं होता। उसका जन्म केवल दूसरों के कल्याण के लिए होता है। अतः उसकी जड़ आत्मिक मण्डल में होती है। जबकि बुराई का बीज बाहरी स्तह से जन्म लेता है। मन के अहंकार या मानसिक पीड़ा से उसका जन्म होता है। इसलिये वह दूसरों के लिए नहीं जीता बल्कि सबसे पहले अपने स्वार्थ की पूर्ति करता है। असुर जालन्धर की तरह वह आत्मा का मैल होता है। मानसिक संसार से उसका अंकुरण होता है और उसी मण्डल में जाकर वह विलीन हो जाता है। उसकी ख़ुराक अंहकार है इसलिए उसकी जड़ ऊपर होती है। जबकि

सच्चाई के बीज की जड़ें गहरी होती हैं, आत्मा में होती हैं इसलिए संत कहते हैं कि अन्तिम जीत सच्चाई की होती है। ईसा मसीह आगे क्या कहते हैं -

It is like a mustard seed- Smaller than all seeds,
but when it falls on the tilled earth it produces a large tree

ईसा मसीह कहते हैं कि जब यह बीज तैयार की गई भूमि पर गिरता है, टिल्ड अर्थ पर गिरता है तो इससे बहुत बड़ा पेड़ पैदा होता है। टिल्ड अर्थ क्या है? भूमि की तैयारी क्या है? जब किसान बीज बोता है तो वह भूमि की तैयारी करता है ताकि बीज के जमाव के लिए सही वातावरण बन सके। अगर सूखे में या पत्थर के ऊपर बीज डाल दिया जाए तो क्या वह अंकुरित हो पाएगा? इसलिये भूमि को तैयार करना पड़ता है। भूमि को चोट खानी पड़ती है। शिष्य जाते हैं गुरू के पास, छोटी सी बात पर नाराज हो जाते हैं। जमीन को तैयार करने के लिए चोट खानी पड़ती है। भूमि की तैयारी क्या है? अहंकार रूपी खरपतवार का नाश करना भूमि की तैयारी है और वह तब होगा जब अपने इष्ट या सद्गुरू के प्रति प्रेम और समर्पण होंगे। जब प्रेम जागत होगा तो समर्पण बढ़ेगा। एक औरत को जब बच्चा होता है, अगर वह औरत दाई के सामने अपने आप का समर्पण न करे तो क्या हो? अगर सिकुड़ने लग गई तो क्या होगा? तकलीफ ही तकलीफ है। डाक्टर के सामने जाते हैं, आपरेशन होता है अगर उसके सामने सिकुड़ने लगे तो क्या होगा? समर्पण करना पड़ेगा। शिष्य गुरू के पास जाएगा तो उसे समर्पण करना होगा। गुरू की दौलत को खींचने के लिए उसके साथ प्रेम करना एक आवश्यकता है और वह भी थोपा गया प्रेम नहीं। ऐसा प्रेम जो खुद ही पैदा हो, बिना किसी प्रयत्न के उपजने लगे तब होगा सच्चा समर्पण। यदि शिष्य ने स्वयं को गुरू के प्रति पूरी तरह से समर्पित कर दिया है, उसका खुद का अस्तित्व या अहंकार बीच में से हट गया है तो वह गुरू की शक्ति -धार के साथ एकमएक हो जाएगा। तब गुरू अपना एक भी राज न छिपा सकेगा। वह कुदरत के

नियम के अनुसार सब कछ देने के लिए मजबूर हो जाएगा। उसके अन्दर की दौलत स्वतः ही बहने लगेगी। यह उनके हाथ की बात नहीं है क्योंकि आप सद्गुरू की धार के अन्दर समा गए हैं। आपकी इज्जत, आपकी बेज्जती सब कुछ गुरू का हो गया है। आपका कोई भी कदम उठता है तो आपको लगता है कि गुरू या इष्ट का कदम उठ रहा है। आप यदि किसी संघर्ष में से गुजर रहे हैं तो आपको लगेगा कि यह संघर्ष मेरे गुरू की मर्जी से है, मुझे कुछ सिखाने के लिऐ है। आप चोट खाऐंगे तो महसूस होगा कि इसमें भी मेरे गुरू ने कोई विशेष कपा की है, सूली का दर्द सूल में काट दिया गया है। फिर जीवन के मायने ही बदल जायेंगे। जीवन में कोई शिकायत न रह जायेगी। सिक्ख गुरू इसे सद्गुरू के भाणे में रहना कहते हैं। सिक्ख कहता है कि हे सच्चे बादशाह! जो आपको भाए वैसा ही करना। मुझे नहीं पता है कि मेरे लिए क्या ठीक है और क्या गलत है। ऐसा समर्पण करना आसान नहीं है। इसमें स्वयं को बीच में से हटाना पड़ता है फिर वह सरसों का बीज जमता है, स्वर्ग के साम्राज्य की कूंजी हाथ लगती है। यह है भूमि की तैयारी। कबीर साहब गुरू और शिष्य के निःस्वार्थ संबंध का वर्णन करते हुए कहते हैं :

शिष्य को ऐसा चाहिए गुरू को सर्वस्व दे।
गुरू को ऐसा चाहिए शिष्य से कछु न ले।।

हम घबरा जाते हैं कि कहीं हमें अधूरा गुरू ना मिल जाये। पूरे गुरू की खोज करना भी एक रहस्यमयी कार्य है, आसान नहीं है। यदि पूरा गुरू मिल जाता है तो फिर कोई चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। सच्चाई से रास्ते पर चलते रहें तो एक दिन धुर धाम में पहुंच जाते हैं। यात्रा आरम्भ हो जाती है फिर स्वर्ग के साम्राज्य की चुम्बकीय शक्ति अंतर में जमा होने लगती है। बिखरी हुई चेतना सीध में आने लगती है, चेनेलाइज होने लगती है। यह तभी होगा जब अपने इष्ट के प्रति समर्पण होगा और सच्चा समर्पण तब होगा जब अपने इष्ट या गुरू पर पूर्ण विश्वास होगा। कहीं भी

जाओ यदि कमी ढूंढने लगे तो कुदरत के प्रबंध में कोई न कोई कमी मिल ही जाएगी। यहां कोई भी जीव, व्यक्ति, वस्तु या अस्तित्व पूर्ण नहीं है। पूर्ण को यहां रहने की आवश्यकता भी नहीं है। उसे किसी चीज में रस लेने या छुटकारा पाने की आवश्यकता नहीं है। इनकी आवश्यकता उसे है जो अधूरा है और यहां सभी या तो किसी न किसी चीज या विचार से बंधे हुए हैं या उनसे छुटकारा पाना चाहते हैं। इतना अवश्य हो सकता है कि पूर्ण के साथ ध्यान-अभ्यास के द्वारा संपर्क साधा जा सकता है, उसका अनुभव किया जा सकता है, उसे जीया जा सकता है। उसे शब्दों में नहीं बांधा जा सकता है। वह विचार का विषय भी नहीं है इसलिये वह कभी जन्म और मरण में नहीं आता। इष्ट या गुरू उस तक पहुंचने के लिये केवल एक माध्यम है।

अतः जहां समर्पण करने को दिल करे, दिल बहने लग जाए तो कर दो समर्पण। देर मत करो। पूर्ण की तालाश में रहे तो तालाश न की जा सकेगी। अपूर्ण पूर्ण की पहचान कैसे कर सकता है? उसके पास वे इन्द्रियां ही नहीं हैं, वे आंखें ही नहीं हैं कि वह पूर्ण को पहचान सकें। उसकी नजर हमेशा संशय या डाऊट से भरी रहती है और संशय वह पर्दा है जो असली तस्वीर नहीं देखने देता है। इसलिये जब दिल कहे, कर देना चाहिए समर्पण। यदि गल्त स्थान पर समर्पण हो गया है या ऊंचे उठ गए हैं और ऊंचा उठने की इच्छा लगातार बनी हुई है तो समर्पण करने के बाद कुदरत आपके सामने पहले से बड़ा साधन सामने लाकर खड़ा कर देगी। आपके लिए हालात ऐसे पैदा कर देगी कि आपको वहां से निकलने के लिए मजबूर कर देगी। हो सकता है वहां से निकलना आपको अच्छा न लगे और मन के लगाव के कारण आप हालात को दोष देने लगें लेकिन यदि अंतर में आत्मिक मांग है, सच्ची पुकार है तो आप अधूरे वातावरण में या संगत में नहीं ठहर सकते हैं। जरूरत है प्रेम और समर्पण की। जितना प्रेम व समर्पण होगा उतनी ही अंतर में पहुंच होती जाएगी। उतनी ही

बिखरी हुई वति या उर्जा बंधती चली जाएगी, प्रेम में आती चली जाएगी। अंतर के दर्शन खुल जायेंगे, तीसरा नेत्र खुल जाएगा। अन्दर के कान खुल जायेंगे। सद्गुरू के दर्शन कहां होंगे? जीसस, राम और कष्ण तत्व के दर्शन कहां होंगे? जब तीसरी आंख खुलेगी तब उनके दर्शन हो सकते हैं। इन दो आंखों से नहीं हो सकते हैं, तीसरी आंख से होंगे और वह तब खुलेगी जब ये दोनो आंखें बंद हो जायेंगी। पूजा-पाठ, तीर्थ-व्रत, हवन-यज्ञ दोनों आंखें खोलकर चलने का रास्ता हैं, इससे उस स्वर्ग के साम्राज्य के, जीसस के, खुदा, परमात्मा या सद्गुरू के दर्शन नहीं हो सकते हैं क्योंकि बारीक इतना है वह बीज कि जब तक तीसरी आंख नहीं खुलेगी तब तक उसके दर्शन नहीं होंगे। वहां से उठने वाला संगीत इतना बारीक है कि जब तक हमारे विचार भी दौड़ रहे हैं वे भी शोर कर रहे हैं। वे भी नहीं सुनने देंगे उस कास्मिक साऊंड को, कास्मिक म्यूजिक को। उस अनहद शब्द को, वर्ड को, खुदा के कलाम को जो इस ब्रह्माण्ड का संगीत हैं, इसकी आत्मा है। यह तब सुनेगा जब हमारे अंदर उठने वाली हर हलचल थम जाएगी। समाधि में विलीन हो जाएगी। और उसकी चाबी है प्रेम और समर्पण के पास। उसके बाद जो विचार आता है वह सद्गुरू का विचार है। जो कार्य करते हैं वह सद्गुरू का कार्य है। उसके बाद सफलता या फेल होने का कोई विशेष महत्व नहीं रह जाता है। हमने अपने अंदर अपना विचार या अपना प्रयत्न समझ कर चेतना रूपी तालाब में जो हलचल पैदा कर दी है वह अब थमने लगती है और उसके पार जो तस्वीर है वह अब साफ नजर आने लगती है। जो आत्मा उसके अन्दर छिपी हुई है वह प्रकाशित हो उठती है तथा उसका प्रकाश बाहर निकलकर हमारे मन और शरीर को अपने रस से तर करने लगता है। दोनों आंखों के बीच की ग्रन्थि (पीनिअल ग्लैंड) क्रियाशील हो जाती है और रहस्यमयी परिणाम सामने आने लगते हैं। शरीर का आन्तरिक कंस्टीटूशन, एन्जाइम या जेनेटिक बनावट भी बदलते चले जाते हैं। जिनके दूरगामी परिणाम

निकलते हैं। इसके बाद जीसस कहते हैं -

but when it falls on the tilled earth
it produces a large tree
and becomes shelter for all the birds of heaven.

जब यह सरसों का बीज तैयार की गई भूमि पर गिरता है तो इससे एक बहुत बड़ा पेड़ (पौधा) पैदा होता है जो स्वर्ग के सभी पक्षियों का आश्रय बनता है, उनका सहारा बनता है। इस पेड़ का बहुत अधिक विस्तार हो जाता है। यह संसार एक पेड़ ही है। हम सभी उसके हिस्से हैं। कोई डाल है तो कोई उसकी शाखा है। बड़ी ताकत है तो वह शाखा है, अपने जैसे छोटे हैं वे उस पेड़ के पत्ते हैं। कबीर साहब कहते हैं -

सतपुरूष एक पेड़ है, निरंजन वहां की डारा।
त्रिदेवा शाखा भए पत्ते संसारा ।।

लेकिन कुछ पत्ते ऐसे भी होते हैं जिनकी पूजा की जाती है। तोड़कर लाते हैं, पूजा घर में रखते हैं। शाखा, पत्ते, कोंपलें सब उस बीज से पैदा हुए हैं जिसने अपने आपको खो दिया। वह बीज खत्म हुआ, उसका नाश हुआ तब वह पेड़ बन पाया है। इस ब्रह्माण्ड का जो बीज था यानि कि खुदा का जो नूर था उसके अंदर ना पत्ते दिखाई देते हैं, ना शाखा दिखाई देती है लेकिन वह बीज जब बड़ा पौधा बनता है तो सब कुछ नजर आ जाता है। उस बीज ने खो दिया अपने आपको और उस पेड़ के रूप में वही प्रकट हो गया। क्या पेड़ के अन्दर उस बीज को ढूंढा जा सकता है? बीज की नियति है समाप्त हो जाना और पेड़ बन जाना। यही प्रकति का नियम है। यदि बीज अपने आपको बचाने लगे और कहने लगे कि मैं अपने आपको तभी खत्म करूंगा जब मुझे कोई ये गारंटी दे कि मैं पेड़ बनूंगा, वह भी बड़ा पेड़, यह विधि के विधान में नहीं है। आप कहने लगो कि मैं तो तब समर्पण करूंगा, तब विश्वास धारूंगा जब मुझे यकीन हो जाएगा कि मुझे परमात्मा मिलेगा, औलाद मिलेगी या मेरा काम बन जाएगा। ये शर्त रखकर यदि गुरू

के पास जाएंगे तो हमें कुछ नहीं मिलेगा। कोरे ही वापिस आ जाएंगे। मेरे सद्गुरू कहते थे कि यदि हम विरोध लेकर गुरू के पास जाते हैं तो विरोध लेकर ही वापिस आएंगे। यदि प्यास लेकर जाते हैं, अपने पात्र को अहंकार से खाली करके जाते हैं, दीनता और प्रेम के साथ जाते हैं तो हम खाली पात्र को भरकर वापिस आएंगे।

अगर बीज यह कहने लगे कि मुझे तसल्ली दिला दो कि मैं पेड़ बनूंगा। क्या आप तसल्ली दिलवा सकते हैं उस बीज को? क्यों नहीं समर्पित कर देता बीज अपने आपको? क्यों नही समा जाता पथ्वी माता के गर्भ में खुशी के साथ ताकि पथ्वी माता उसकी भरपूर उर्जा को पेड़ बनाने के लिए प्रयोग कर सके। क्यों नहीं वह कह देता कि मुझे कुछ नहीं चाहिए, मुझे खोने दो बेनाम होकर अनामी के आंचल में। क्यों नहीं कह सकता कि मुझे बरबाद हो जाने दो क्योंकि बरबादी में ही मेरी आबादी है, नए जीवन का प्रस्फुटन है। पेड़ के रूप में बीज को नया जीवन प्राप्त होगा। लेकिन बदला हुआ जीवन, बदली हुई धार जहां पर उसका पुराना अस्तित्व चरमरा कर टूट जाएगा। लेकिन उसे समर्पित करना होगा, इसके सिवाय कोई चारा भी नहीं है।

जब वह बीज धर्म का ठेकेदार बन जाता है, बुढ़ापे की बीमारी से ग्रस्त हो जाता है, हाथ पांव और सारा शरीर बिमारी के कारण कांपने लग जाते हैं, आपरेशन के बाद आपरेशन हो रहे हैं लेकिन फिर भी वह बीज कह रहा है कि मैं अपनी गद्दी नहीं छोड़ सकता। मुझे यहां बने रहने के लिए ईश्वर की आज्ञा है कितनी दयनीय दशा है उस बीज की और कितना खतरनाक संकेत है उस बीज की आध्यात्मिक विरासत के लिए इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

बीज को समर्पण करना होगा तभी एक बीज से हजारों बीज, लाखों बीज पैदा हो सकेंगे। मेरे सद्गुरू ताराचन्द जी महाराज ने किया था समर्पण। शरीर त्यागने से एक महीना पहले ऐलान किया कि मैं अब जा

रहा हूँ। मेरा कार्य पूरा हो चुका है। ऐसा कहकर उतर गए समाधि में। चारों तरफ हलचल मची हुई थी कि क्या हो रहा है। इतना भारी और इतना चुस्त शरीर, किसी को विश्वास नहीं हो रहा था कि इतनी जल्दी वे इस संसार से विदा हो जाएंगे। इच्छा इतनी बलवान थी कि कुदरत को उनकी भावपूर्ण विदाई का प्रबंध करना पड़ा । एक नाटक खेला गया था जिसके सूत्रधार थे वे स्वयं। बाकी पात्र कठपुतली की तरह खेल खेले जा रहे थे। उन्हें ज्ञान नहीं था कि तुमसे यह खेल खिलाया जा रहा है। इसी प्रकार अंतिम क्षणों में जीसस ने भी नाटक की रचना की थी जिसे आज तक नहीं समझा गया है। क्या बिना इच्छा किए जीसस को विदाई दी जा सकती है? क्या सुकरात या दयानंद को जहर दिया जा सकता है? यह संभव नहीं है। जहां ऐसा समर्पण होता है वहां बहुत बड़ा आध्यात्मिक पेड़ अस्तित्व में आता है जिसका इतिहास हमेशा गवाह रहता है।

यदि बीज सिकुड़ने लग जाए, समर्पण से कतराए तो वह बीज स्वयं के अन्दर कैद बन कर रह जाएगा। उसकी जाति का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। यदि बीज कहे मुझे गारंटी चाहिए कि मुझसे पेड़ अवश्य ही बनेगा, यह संभव न हो सकेगा। मान लो उस बीज को यदि कोई गारंटी भी दे दे कि हां तू बड़ा पेड़ बनेगा। बहुत बड़ा पेड़ बनेगा तो क्या वह बीज यह देखने के लिए जीवित रहेगा कि वह पेड़ बना या नहीं। खतरे के साथ मत खेलो । समर्पित करते चलो अपने आपको परमात्मा के लिए, अस्तित्व के लिए, इसके सिवाय कोई रास्ता भी नहीं है। दूसरों के लिए समर्पित करते चलो वरना जीवन कैद बन जाएगा। घुटन बन जाएगा जिससे पीढ़ियों तक छुटकारा नहीं हो सकेगा और उसका जिम्मेवार कोई दूसरा नहीं हम स्वयं होंगे।

हमारे समर्पण में ही आबादी है। हमारे खोने में ही आजादी है। हमसे बच्चे पैदा हो रहे हैं। वे सभी हमारा ही तो नया रूप हैं। हम ही तो उनके रूप में बदलते जा रहे हैं। हम अपने आपको खोते जा रहे हैं। नई

कोपलें फूटती जा रही हैं। नई शाखाएं और पत्ते निकलते जा रहे हैं और पेड़ फैलता जा रहा है। छोटे से बीज का ब्रह्मण्डी विस्तार होता जा रहा है। जीसस कहते हैं -

it produces a large tree and
becomes shelter for all the birds of heaven.

जीसस कहते हैं कि सरसों का छोटा सा बीज जब विस्तार लेता है तो बहुत बड़ा पेड़ बनता है और वह पेड़आकाश के सारे पक्षियों के लिए बसेरा बनता है। यह हो सकता है कि ब्रह्माण्ड का पेड़ सभी के लिए सुखकारी न हो क्योंकि वहां सूर्य की अग्नि भी है जो झुलसा देती है, आंधी, तूफान के थपेड़े भी हैं जो बसी हुई बस्तियों को उजाड़ देते हैं लेकिन परमात्मा के साम्राज्य का जो पेड़ है, जीसस, कबीर या ताराचन्द के अन्दर जिस स्वर्ग के साम्राज्य ने जन्म लिया है वह सबके लिए शांति प्रदान करने वाला है। सुखकारी और आनन्ददायक है। वहां सभी पक्षियों को चैन मिलता है। वहां कौए और हंस दोनों का बसेरा होता है। क्योंकि वहां प्रेम और भक्ति का रस टपकता रहता है वहां समर्पण के साथ खाली झोली लेकर जो भी जाता है खाली हाथ नहीं लौटता है। यह है संत मत के स्वर्ग के साम्राज्य का अर्थ जिसे ईसा मसीह ने बहुत सुंदर भाषा में वर्णन किया है और आज के साम्प्रदायिक व आंतकवादी संदर्भ में विशेष महत्व रखता है।

ईसा मसीह होने का अर्थ

Jesus said to his disciples:
Make a comparison to me and tell me whom I am like.

Simon Peter said to him:
Thou art like a righteous angel.

Matthew said to him:
Thou art like a wise man of understanding.

Thomas said to him:
Master, my mouth will not be capable
of saying whom thou art like.

Jesus said:
I am not thy master, because thou hast drunk,
thou hast become drunk from the bubbling spring
which I have measured out.

And he took him,he withdrew,
He spoke three words to him.

Now when Thomas came to his companions,
they asked him:
What did Jesus say to thee?

Thomas said to them:
If I tell you one of the words he said to me,
you will take up stones and throw at me;
and fire will come from the stones and burn you up.

ईसा मसीह ने अपने शिष्यों से कहा:
बताओ मैं कौन हूं किसके समान लगता तुम्हें।

साईमन पीटर ने कहा:
तुम एक न्याय-परायण आदर्श फरिश्ता लगते हमें।

मैथ्यू ने कहा:
तुम एक बुद्धिमान पुरूष हो जिसकी समझ सबसे अलग।

थामस ने कहा:
मेरे स्वामी! तुम क्या हो कह सकता नहीं,
कुछ कह सकूं इतना मुझमें सामर्थ नहीं।

मसीह कहने लगे:
तुम सभी नशे में हो मैं तुम्हारा सद्गुरू नहीं
तुम सबने पी है शराब झरने के बुलबुलों से जो होती प्राप्त,
पैमाने में है जो आई हुई मेरे द्वारा मापी गई।

मसीह ने थामस का हाथ पकड़ा और कोने में ले गए,
मुर्शिद ने मुरीद से केवल तीन शब्द कहे।

जब थामस अपने साथियों में लौटा,
उन्होंने व्याकुल हो उससे पूछा:
जीसस ने उससे कहा क्या?

थामस उदास हो कहने लगा:
अगर मैं तीन शब्दों में से एक का खुलासा करूं
तुम पत्थर उठाकर मारोगे मुझे,
फिर उन पत्थरों से फूटेगी आग,
जो तुम्हें जलाकर कर देगी राख।

ईसा मसीह और शिष्यों के बीच बातचीत हो रही है। मसीह अपने शिष्यों से पूछ रहे हैं कि बताओ मैं तुम्हें किसके समान लगता हूँ? यह सवाल कोई साधारण सवाल नहीं था क्योंकि मसीह ने एक दम नई शिक्षा का प्रचार किया था जो उस समय की सारी धारणाओं को चुनौती दे रही थी। यहुदियों के पूर्वजों और धर्म-शास्त्रों द्वारा कहे गए सूत्रों की मसीह द्वारा नई व्याख्या की जा रही थी। वक्त और समाज की जरूरत के अनुसार धर्म शास्त्रों का वर्णन किया जा रहा था जो किसी भी धर्म-शास्त्री और पुरोहित द्वारा स्वीकार्य नहीं था। उनकी जीविका के लिए खतरा पैदा होने लगा था। वे शास्त्रों और पैगम्बरों के नाम पर लोगों को बहका रहे थे, उनको लूट रहे थे। जब कोई भी करनी का धनी संत महात्मा आता है तो उसे ऐसे विरोध का सामना करना ही पड़ता है। जीसस के आने से पहले भी ऐसा होता था और आज भी ऐसा होता है क्योंकि संत जो कहता है वह अपना अनुभव कहता है। जीवन धारा जो सबके अन्दर उस समय बह रही होती है उसे आधार बना कर कहता है। जब उस जीवन धारा के बहने में रूकावट आने लगती है, उसका ठहराव होने लगता है, उसमें सड़न पैदा होने लगती है तो कुदरत उस सड़न से छुटकारा पाने के

लिए किसी न किसी परम चेतना को पथ्वी पर भेजती है ताकि उस जीवन धारा को नयापन मिल सके और रचना का कार्य निर्बाध रूप से आगे बढ़ सके।

उस समय का समाज इतना रूढ़ीवादी था कि जीसस की बातों को समझना और स्वीकार करना अत्यंत कठिन हो रहा था। जीसस इतना ऊंचा बोल रहे थे जिसे कोई समझ नहीं पा रहा था। उनकी बातों को स्वीकार करने का अर्थ था पुरानी सभी मान्यताओं का टूटना और धराशाही होना। जो वे बोल रहे थे उनकी बातें भारतीय मनीषियों और उस समय के भारतीय शास्त्रों से बहुत अधिक मेल खाती थी जो यहुदी समाज के लिए एक दम नयी शिक्षा थी। वे परमात्मा का राज्य स्थापित करना चाहते थे जिसमें सभी सदगुणी मनुष्यों को राज्य का हकदार बनाना चाहते थे। वे जाति-पाति, नर-नारी और ऊंच-नीच में भेदभाव को समाप्त करना चाहते थे। स्थानीय देवी-देवताओं से हटाकर ईश्वर ही सबका पिता और रक्षक है ऐसी शिक्षा का प्रचार कर रहे थे। सुकरात और महात्मा बुद्ध की तर्ज पर वे भी समाज को बदलना चाहते थे उसे सुख प्रदान करना चाहते थे। आन्तरिक ज्ञान की कमी होने के कारण लोग दु:खी थे। उसके ऊपर पुरोहित और धार्मिक व्यक्ति उनका शोषण कर रहे थे। वे गल्त प्रचार कर रहे थे जिससे लोग भ्रमित रहें और उनकी रोजी-रोटी चलती रहे।

बाहरी समाज उनकी बातों को नहीं समझ रहा था, अतः वे अपने शिष्यों से पूछने लगे कि मैं तुम्हें किसके समान लगता हूं? मैं कौन हूं?

Jesus said to his disciples:

Make a comparison to me and tell me whom I am like

मनुष्य के लिए हमेशा से एक विडम्बना रही है कि वह अपनी समस्याओं को बाहरी समझता है इसलिये वह बाहरी रूप से उनका इलाज ढूंढता रहता है। समस्याएं बाहर नहीं हैं बल्कि हमारे अंदर हैं और अंदर से ही उपजती हैं। इसलिए इलाज भी आन्तरिक ही होना चाहिए। यदि

वह अन्दर से उदास है तो उसे बाहर भी हर तरफ उदासी नजर आती है। यदि वह अंदर से शंकालू है तो उसे हर व्यक्ति शंकालू और धोखेबाज नजर आता है। जिसके अन्दर में खुदा का रूप प्रकट हो जाता है उसे बाहर भी कण-२ में खुदा की अभिव्यक्ति नजर आती है। जो धर्म दंगा करवाते हैं, साम्प्रदायिक झगड़े करवाते हैं उनका ईश्वर अन्दर हृदय में रहने वाला ईश्वर नहीं बल्कि आकाश में किसी स्थान पर बैठा हुआ काल्पनिक और मानसिक चित्रण है। जब तक परमात्मा को बाहरी समझा जाएगा तब तक देवी-देवताओं की सूची लम्बी होती ही रहेगी। हर रोज नए देवता अस्तित्व में आते रहेंगे और समाज आपस में बंटता रहेगा, लड़ता और झगड़ता रहेगा। महात्माओं को जहर दिया जाएगा। उन्हें सूली पर चढ़ाया जाता रहेगा। स्वर्ग और नरक के नाम पर भोले-भाले लोगों का शोषण होता रहेगा।

जिस समय ईसा मसीह का जन्म हुआ उस समय इस्राईल में हजरत मुसा और दूसरे पैगंबरों की मान्यता थी। इसके अतिरिक्त अनेक देवी-देवताओं और प्राकतिक शक्तियों की पूजा का प्रचलन था। ईसा मसीह ने कहा कि सारी दुनिया का मालिक एक है और उसके साम्राज्य की चाबी तुम्हारे अन्दर है। उसी से प्यार करो। इसी तरह से हजरत मुहम्मद, जो मुसलमानों के मसीहा हुए हैं वे भी अरब के मरूस्थल में, उस समय आए थे जब वहां पर छोटे-२ कबीले रहते थे जिनके अपने ही देवी-देवता थे। कोई किसी को मानता था तो कोई किसी को। उन्होंने भी यही नारा लगाया कि सबका खुदा एक है। उन्होंने कहा -

लाइलाहाइलिल्लाह मोहम्मद-उल-रसूल इल्लाह।

रहमान उल रहीम रब्बूल आलमीन।।

अर्थात् अल्लाह के सिवाय कुछ नहीं है, हजरत मोहम्मद अल्लाह के पैगम्बर हैं। वह दयाल है और सारे ब्रह्मण्डों का रब (खुदा) है।

मानव का जब विकास हुआ तो आरम्भ में प्रकति की शक्तियों की

पूजा की जाती थी। परमात्मा का विचार, एक शक्ति या एक आत्मा का विचार तो बाद में पनपा है। वेदों में इन्द्र, वरूण, सूर्य, अग्नि जैसी शक्तियों की स्तुति की गई है। मनुष्य जब आंधी, वर्षा, तूफान, बाढ़ या अग्नि से प्रभावित हुआ तो इन्हें शांत करने के लिये वह इन्हें कोई नाम देकर इनकी पूजा करने लगा ताकि वह सुरक्षित बना रहे। इसी तरह जब हजरत मोहम्मद आए तो उन्होंने 12 साल तक एक गुफा 'गारे हुरा' में तपस्या की। जब तपस्या की तो अन्तर में आवाजे-मुस्तकीन सुनी, खुदाय कलाम सुना। उनके अन्दर अल्लाह की आयतें (ज्ञान) उतरने लगी। उनके बाद उन्हीं के रास्ते पर चलते हुए अनेक सूफी महात्माओं ने भी इस अंतर ज्ञान को अपने अन्तर में सुना और कहा कि खुदा की नमाज बाहर नहीं है वह हमारे अन्दर ही है और सभी के अन्दर मौजूद है। हजरत मोहम्मद तो चले गये लेकिन उनके बाद उनकी शिक्षा को कुछ लोगों ने अपने रंग से रंग दिया। उस पर धार्मिकता का रंग चढ़ा दिया गया और एक ही खुदा के बंदे आपस में लड़ने लगे। भाई-भाई का दुश्मन होने लगा। राजनैतिक प्रतिद्वन्दता ने उसे ओर भी गाढ़ा रंग दे दिया।

ईसा मसीह ने जब यह बात कही तो उनके शरीर में कीलें ठोक दी गई और कहा कि बुलाओ अपने ईश्वर को जो तुम्हें इस यातना से बचा सके। फिर हजरत मोहम्मद लगभग 600 साल बाद आए, उन्होंने यह बात कही तो उन्हें मारने के लिए लोग उनके पीछे पड़ गए। उन्हें रात भर छुप कर रहना पड़ा और भागकर मक्का से मदीना जाना पड़ा। ईसा मसीह से पहले यूनान में सुकरात आए तो उन्हें भी यातनाएं दी गई और कहा गया कि यह आदमी नास्तिक है, युवकों को बिगाड़ रहा है। जिसके जुर्म में उन्हें जहर का प्याला पिलाया गया। जब यही बात शंकराचार्य ने कही तो देश के पूर्वी आंचल में उन पर जानलेवा हमला किया गया और उनके भोजन में विष मिलाकर खिलाया गया। कबीर और रविदास ने भी एक ही अल्लाह के गुण गाए तो उन्हें भी यातनाएं दी गई। स्वामी दयानंद को जहर

दे दिया गया। मेरे सद्गुरू को भी अपने गांव (दिनोद) से निकल कर जाना पड़ा और कई दिन अन्टा गांव में जाकर बिताने पड़े तथा लोगों का विरोध सहना पड़ा। इसी प्रकार दूसरे संतों नानक, दादू, पल्टू को अनेक कष्ट सहने पड़े। महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी को भी नहीं बख्शा गया।

जब आत्मा का अनुभव खुलता है तो परावाणी और पराविद्या का अनुभव भी खुलने लगता है। दिव्य-वाणी, दिव्य-दष्टि और दिव्य-विचार का अनुभव भी प्रकट होने लगता है। ऐसा मनुष्य जिसे यह अनुभव हो गया है, वह जो देखता है या सुनता है वह साधारण व्यक्ति नहीं देख पाता है, न ही सुन पाता है और विचार कर पाता है क्योंकि उसका आधार आलोकित हो चुका है। उसके अन्दर से परम् चेतना की धार बहने लगी है जो आने वाले समय की आगवानी करती है जिसका अक्ष या प्रतिबिम्ब मन और बुद्धि पर गिरने लगता है। उसी के अनुसार मुख से वाणी निकलने लगती है और विचार पैदा होने लगता है लेकिन ऐसे पुरूष की वाणी को समझना आसान नहीं है वह हमारी मानसिक मान्यताओं पर चोट करती है, पूर्व धारणाओं को ध्वस्त करती है जिसे हम सहन नहीं कर पाते हैं। इसलिये सद्गुरू स्वरूप को समझना बहुत कठिन है। जो अन्तर में नहीं गया जिसने शब्द को नहीं सुना वह सद्गुरू की इज्जत नहीं कर सकता है। उसको पता ही नहीं लग सकता है कि ये चीज क्या है। कितने घूमते रहें, कितनी ही गुरू की बड़ाई करते रहें लेकिन जब तक अन्तर नहीं खुलता, अन्दर की आवाज, खुदा का कलाम, वो कलमे इलाही नहीं खुलता तब तक हम सतगुरू की पहचान नहीं कर सकते हैं और न ही उसकी इज्जत कर सकते हैं। केवल गुरूमुख ही सद्गुरू को पहचान सकता है, उसके सिवाय किसी के बस की बात नहीं है। इस कहावत में यही पूछा गया है कि तुमने गुरू को क्या समझा है? उसका रूप क्या है?

जब पथ्वी पर गुरू का यह परारूप प्रकट होता है तो एक आधारशिला रखी जाती है, भविष्य के निर्माण की नई नींव रखी जाती है।

एक नई रचना खुलती है। जीसस की इस कहावत को समझने से पहले महात्मा सुकरात के जीवन पर एक नजर डालें कि उनकी जीवन शैली क्या थी और उनके शिष्यों ने उसे किस प्रकार समझा। मेरे सद्गुरू का जीवन सुकरात के जीवन से बहुत मिलता है, जीसस के जीवन से बहुत मिलता-जुलता है। वे दूसरों को सुख देते रहे लेकिन खुद आखरी समय तक दुःखों का जहर पीते रहे। सुकरात भी हमेशा लोगों का क्रोध सहन करते लेकिन उन्हें अज्ञान से बाहर निकालने के लिए उनके साथ तर्क-वितर्क करने से नहीं चूकते थे। किसी को भी जब गल्त रास्ते पर चलते हुए देखते तो उसे वहीं पकड़ लेते और सवाल - जवाब करने लगते। वह किसी भी कीमत पर यह रास्ता छोड़ने के लिए तैयार न थे। अपने सुख व चैन की परवाह किए बिना आखरी समय तक ज्ञान बांटते रहे। वह मंत्रियों, कुलीन और धनवान लोगों को भी नहीं बख्शते थे। जिससे कुछ लोग उनका विरोध करने लगे थे। वह ऐसे तपस्वी थे कि घंटों तक कहीं भी समाधि लगाकर खड़े हो जाते थे। आंखें बंद करके खड़े रहते थे। उनके खिलाफ कोर्ट में तीन आदमियों ने मुकद्मा कर दिया। उनके ऊपर दो इल्जाम लगाए गए कि एक तो वह नौजवानों को गुमराह करता है और दूसरा वह नास्तिक है, एथेन्स के जितने देवता हैं वह उनकी पूजा नहीं करता है। बल्कि उसने अपने नए देवता बना लिये हैं। जब मुकदमा चलने लगा तो सुकरात अपने मुकदमें की पैरवी खुद ही करने लगा। सभा में एथेन्स शहर के पांच सौ कुलीन व्यक्ति मौजूद थे जिनकी राय से मुकद्में का फैसला होता था। मुकद्में की पैरवी के बाद वे सभी वोट डालते थे। यदि कोई उसमें हार जाता तो उसके लिए सजा निश्चित की जाती थी। सुकरात को अपनी सफाई देने के लिए कहा गया। सुकरात किसी भी बात का आरम्भ प्रश्न से करते थे। उनकी ज्ञान देने की शैली ऐसी थी जो प्रश्न- उत्तर से आरम्भ होती थी और प्रश्न उत्तर से ही समाप्त होती थी। आरोप लगाने वाले तीन व्यक्ति थे, अनाइटस, लाइसन और मिलेटस। लेकिन मुकदमें के दौरान केवल मिलेटस ही पेश

होता है। सबसे पहले सुकरात एथेन्स के युवकों को भ्रष्ट करने के आरोप पर चर्चा करते हैं। वे मिलेटस से पूछते हैं- ''लगता है आप युवकों की भलाई के लिए बहुत चिन्तित हैं, कपया यह बताएं कि बुरे लोगों में रहना अच्छा है या भले लोगों में?'' मिलेटस ने कहा कि निश्चत ही भले लोगों में। इसके बाद सुकरात पूछते हैं - ''क्या कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो अपने साथियों से लाभ प्राप्त करने की बजाय नुकसान उठाना चाहेगा?'' मिलेटस ने कहा 'नहीं'। सुकरात ने कहा ''इसका अर्थ यह है कि मिलेटस ने मेरे ऊपर गल्त आरोप लगाया है। जान बुझकर मैं युवकों को बिगाड़कर स्वयं क्यों हानि उठाना चाहूंगा? यदि अनजाने में मुझसे यह काम हुआ भी है तो मिलेटस का फर्ज था कि वह मुझे ऐसा करने से रोकता, मुझे गल्त रास्ते पर जाने से रोकने की शिक्षा देता। परन्तु वह तो सीधा मुझे न्यायालय में ले आया। इसका अर्थ यह है कि आरोपकर्ताओं ने इस मामले पर कभी विचार ही नहीं किया है, बल्कि इन्हें किसी के द्वारा उकसाया गया है।''

इसके बाद सुकरात दूसरे आरोप पर आते हैं। वे मिलेटस से पूछते हैं कि ''मुझ पर दूसरा आरोप यही है ना कि मैं नौजवानों को एथेन्स के देवताओं के स्थान पर नये देवताओं में विश्वास करने की सलाह देता हूँ? और इस प्रकार उन्हें पथ भ्रष्ट करता हूं?'' जब मिलेटस ने हां कहा तो सुकरात पूछते हैं कि नए देवताओं को मानने का अर्थ तो यह हुआ कि मैं नास्तिक नहीं हूं इसलिए मुझ पर नास्तिकता का आरोप कैसे लगाया जा सकता है?

मिलेटस फिर कहता है कि सुकरात नास्तिक ही है। वह सूर्य को पत्थर का और चन्द्रमा को मिट्टि का बना कहता है। इस पर सुकरात कहते हैं, ''यह बात मैंने कभी नहीं कही है। यह सिद्धांत तो पूर्व के दार्शनिक एनेक्सागोरस द्वारा दिया गया है। इस बात को यहां बैठे न्यायाधीश भी जानते हैं।'' मिलेटस का संकेत 'दिव्य वाणी' की तरफ था जिसे सुकरात आत्मा की आवाज कहते थे और वे अपना सारा कार्य दिव्य

वाणी सुनकर ही निर्धारित करते थे। इसी दिव्य वाणी का संकेत पाकर उन्होंने राजनीति से मना कर दिया था। इसी वाणी का संकेत पाकर वह सारे मुकदमें के दौरान निर्भय बने रहे थे। वे सबसे अधिक महत्व इसी वाणी को देते थे। इसीलिए उन पर यह आरोप लगाया गया था कि सुकरात ने अपने अलग देवता बना लिए हैं। इसका जवाब देते हुए सुकरात पूछते हैं कि क्या कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो यह कहे कि बांसुरी की आवाज तो है परन्तु बांसुरी बजाने वाला नहीं है? मिलेटस के न कहने पर सुकरात कहते हैं कि तब आप यह कैसे मान सकते हैं कि मैं दिव्य वस्तुओं के अस्तित्व में तो विश्वास करता हूं और दिव्य शक्तियों में नहीं। ये दिव्य शक्तियां क्या हैं, ये देवता ही तो हैं। इसलिये यह आरोप मिथ्या है कि सुकरात देवताओं में विश्वास नहीं करता।

सुकरात कहते हैं कि मुझ पर दायर किया गया मुकदमा एकदम झूठ है। मुझे आशंका है कि मेरे लिए मत्युदण्ड पहले ही निश्चित किया जा चुका है। मुझे मत्यु की परवाह नहीं है क्योंकि ऐसा इतिहास में पहले भी हो चुका है, आगे भी होगा और सम्भवतः मेरी भी यही नियति होगी। मत्यु जीवन की अनिवार्य नियति है, फिर इसका सामना करने में भय कैसा? सुकरात न्यायलय को बताते हैं कि वह स्वयं तीन बार पेलोपोनेशियन युद्ध में उन्हें सौंपी गई चौंकियों में बिना जान की परवाह किए डटे रहे थे, जब वहां उन्होंने देश की सेवा को मत्यु से बढ़कर कर्तव्य माना था तो अब ईश्वर द्वारा सौंपी गई इस चौकी को मत्यु से डरकर कैसे छोड़ सकते हैं? मत्यु से डरना हमारा अज्ञान ही है, संभव है कि मत्यु मानव जीवन में घटने वाली सबसे अच्छी बात हो। सबसे बड़ी बुराई है ईश्वर की बात न मानना। अतः आप इस शर्त पर मुझे रिहा कर भी दें कि मैं ज्ञान की खोज करने और दूसरों को कसौटी पर कसने का कार्य छोड़ दूंगा, तो मैं आपकी यह शर्त स्वीकार नहीं करूंगा। जब तक मुझमें सांस है मैं ईश्वर द्वारा निर्धारित अपना कर्तव्य करता रहूंगा और याद दिलाता रहूंगा कि क्या आप धन,

ख्याति और सम्मान को इतना अधिक महत्व देने के कारण लज्जित नहीं हैं? क्या आपको ज्ञान, सत्य और आत्मा की पूर्णता के कारण चिन्ता नहीं है? यह कार्य मैं नहीं छोड़ सकता। यहां मैं यह देखूंगा कि एथेन्सवासी कम मूल्यवान को अधिक और अधिक को कम मूल्यवान समझ रहे हैं, उनमें सत्कर्म का अभाव है तो मैं उन्हें तिरस्कत करने से नहीं चूकूंगा। खासकर एथेन्स के नागरिकों को, क्योंकि ये मेरे अपने हैं। यह तो इस नगरी का सौभाग्य है कि मैं उनकी सेवा में ईश्वर द्वारा नियुक्त किया गया हूं। अतः चाहे मुझे सौ बार मरना पड़े मैं ऐसा ही करता रहूंगा।

आगे सुकरात कहते हैं कि अभियोग कर्ता मुझे मत्यू दण्ड दिलवाकर मेरी थोड़ी भी हानि नहीं कर सकते हैं। बल्कि मुझे दण्ड दिलवाकर वे अपनी और एथेन्स की ही हानि कर रहे हैं। मेरे रूप में ईश्वर ने आपको जो तोहफा दिया है उसे स्वीकार कर अपना नुकसान करने के साथ-२ ईश्वर के विरूद्ध भी पाप कर रहे हैं क्योंकि मैं उस बड़ी मक्खी की तरह हूं जो आलस में पड़े हुए पशु को डंक मारकर जगाती रहती है। यह कार्य मैं संसार की सबसे सुन्दर और ज्ञान का केन्द्र इस नगरी के निवासियों के साथ लगातार कर रहा हूं। लेकिन आप इस मक्खी को सदा के लिए हटा देना चाहते हैं ताकि जिन्दगी भर मजे से आलसी और निकम्मे बनकर सोते रहें।

बहस होने के बाद वह ऐतिहासिक मतदान होता है, जिसमें एथेन्स के नागरिक बाइबिल के इस कथन को सत्य सिद्ध करते हैं कि मसीहा का अपने ही देश में सबसे अधिक तिरस्कार होता है। इस फैसले में कुल 501 लोगों ने भाग लिया। इनमें से 281 मत सुकरात के विपक्ष में तथा 220 पक्ष में पड़े। उनके लिए मत्युदण्ड का प्रस्ताव रखा गया। फिर भी कानून को देखते हुए उनके सामने मत्युदण्ड की बजाए दूसरा कोई दण्ड चुनने का प्रस्ताव भी रखा गया।

सुकरात परिहास करते हुए कहते हैं कि मैंने एथेन्स की जो सेवा

की है, उसके लिए कुर्बानी दी है, उसके बदले में मुझे सजा नहीं इनाम मिलना चाहिए। मुझे ओलम्पिक में विजयी खिलाड़ी के समान सरकारी खर्चे पर रखा जाना चाहिए। बल्कि मुझे तो उनसे भी बढ़कर पुरस्कार मिलने चाहिए। खिलाड़ी तो खूब मजे करते हैं और आपको सुखी बनाने का केवल दावा करते हैं, लेकिन मैंने तो कितनी अभाव से भरी पीड़ित जिन्दगी बिताई है परन्तु फिर भी आपको वास्तविक सुख प्रदान करता हूं आपको अज्ञान से बाहर निकालता हूं।

इसके बाद सुकरात विभिन्न प्रकार की सजाओं का विश्लेषण करते हुए कहते हैं, ''क्या मैं अपने लिए उम्रकैद का प्रस्ताव रखूं? परन्तु जीवन के अन्तिम दिन मैं एक के बाद दूसरे अधिकारी का गुलाम बनकर कैसे बिता सकता हूं? मैं अर्थदण्ड भी नहीं दे सकता क्योंकि मैं बहुत गरीब हूं। एक दण्ड देश निकाले का है, सम्भव है कि आप लोग इस पर सहमत हो जाएं लेकिन मैं इसका प्रस्ताव भी नहीं करूंगा। देश निकाले के बाद मैं जिस भी देश में रहूंगा वहां के लोगों को उसी तरह तर्क की कसौटी पर कसूंगा जैसे कि आप लोगों को कसता हूं, लेकिन जब आप लोगों ने ही मुझे नहीं सहा तब दूसरे देशवासी मुझे कैसे सहन कर सकते हैं। तब तो मुझ जैसे बुढ़े आदमी को दोबारा देश निकाले की सजा भुगतनी पड़ सकती है। वहां जाकर मैं चुप रहना चाहूं तो भी नही रह सकता, क्योंकि वहां के युवक मुझे बोलने पर मजबूर करेंगे और मैं बोलूंगा, जिसके लिए मुझे फिर देश निकाला मिलेगा। अतः मैं इस सजा का प्रस्ताव भी वापिस लेता हूं।

अंत में सुकरात मित्रों द्वारा प्रार्थना करने पर 30 मीना (चांदी के सिक्के) दण्ड का प्रस्ताव करते हैं। लेकिन वे कहते हैं कि मैं इतना निर्धन हूं कि मेरे पास केवल एक मीना है जो मैं आपके सामने रखता हूं। उनके धनी मित्र और शिष्य प्लेटो उनको यह जुर्माना अदा करने के लिए मजबूर करते हैं लेकिन यह भी तो सुकरात के उसूलों के खिलाफ ही था। अंत में पुनः मतदान होता है और एथेन्सवासी उस मौके को भी खो देते हैं।

सुकरात अपने अंतिम भाषण में कहते हैं कि जो कुछ हुआ शायद ठीक ही हुआ और मैं समझता हूँ कि सब नियमपूर्वक हुआ, परन्तु जाते-जाते आप सभी मेरी भविष्यवाणी सुन लें। मुझे सजा देने वाले मेरी मत्यु के बाद निश्चित रूप से इससे भी गंभीर सजा पाएंगे। एथेन्स के लोग आपसे मेरी मत्यु का हिसाब मांगेंगे। यदि आप ऐसा सोचते हैं कि आप इस कलंक से बच जाएंगे तो आप गल्त सोचते हैं। मैं तो वैसे ही 70 साल पार कर चुका हूं। यदि आप मत्युदण्ड नहीं देते तो भी मैं इस जिन्दगी से पलायन करने वाला हूं। मुझसे पीछा छुड़ाने की आपकी इच्छा वैसे ही पूरी हो जाती लेकिन आपने अपने आपको कलंकित कर लिया है। जहां तक मेरी मत्यु का प्रश्न है यह मेरे लिए कोई आश्चर्य नहीं है। मत्यु के बारे में व्यक्ति दो प्रकार से सोच सकता है। मरने के बाद व्यक्ति या तो अपना अस्तित्व ही खो देता है और उसकी सारी क्रियाएं समाप्त हो जाती हैं या फिर मत्यु मात्र एक परिर्वतन है जिसमें आत्मा एक स्थान से दूसरे स्थान पर यात्रा करती है।

दोनों ही परिस्थितियां बुरी नहीं हैं। यदि मत्यु के बाद सारी क्रियाएं समाप्त हो जाती हैं तो इसे ऐसी नींद समझें जो स्वप्न के कारण भी भंग नहीं होती । यह तो एक आनन्दित अवस्था है। स्वप्न-रहित गाढ़ी निद्रा तो निश्चय ही सुखकर होती है। यदि दूसरी सम्भावना को स्वीकार करें कि मत्यु आत्मा की एक स्थान से दूसरे स्थान पर यात्रा है तो भी यह लाभ की स्थिति है। मरने के बाद मेरी मुलाकात महान लोगों से होगी जो इस संसार से जा चुके हैं। वहां भी मैं कसौटी पर कसने का यह कार्य जारी रखूंगा जिसमें मुझे अपार आनन्द मिल सकता है क्योंकि वहां पर इसके लिए निश्चय ही मत्युदण्ड नहीं दिया जाएगा।

सुकरात को मौत की सजा दे दी जाती है। विषपान करने से तीन दिन पहले उनके एक परममित्र क्रीटो जेल से निकालने का प्रबंध करते हैं और वहां से भाग जाने के लिए बार-२ उनसे विनती करते हैं लेकिन

सुकरात कहते हैं कि हर व्यक्ति के लिए देश का कानून सबसे बड़ा है। किसी राष्ट्र के नागरिक यदि वहां के कानून को नहीं मानते हैं वह देश कमजोर हो जाता है। इसलिए हम सबका यह कर्तव्य है कि हम देश और कानून की आज्ञा का हर हालत में पालन करें। उनके साथी और मित्र उन्हें उनके बच्चों की सौगन्ध देने लगे लेकिन सुकरात तो सुकरात थे, कहने लगे कि तुमने आज तक मुझे समझा नहीं है। मुझे तो रात को स्वप्न में एक दिव्य फरिश्ता नजर आया जो मेरे लिए फूलों से बना हुआ रास्ता तैयार कर रहा था, मेरे चलने के लिए दिव्य मार्ग तैयार कर रहा था। दिव्य लोक की शक्तियां खुश हो रही हैं और तुम कहते हो कि जेल से भाग जाओ। सुकरात जो भी फैसला लेता था अन्तर की आवाज सुनकर लेता था, फिर वह किसी की नहीं सुनता था। वह कहने लगा कि ईश्वर का यही फैसला है और इसे मैं स्वीकार करता हूं।

सुकरात को विष का प्याला दे दिया गया। महाप्रयाण कर गए। उसके साथ ही उनके मित्र और शिष्य भी एथेन्स को छोड़कर चले गए और अपने सद्गुरू के विरह में इधर-उधर भटकने लगे। किसी को कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा था। सुकरात के जाने के बाद एथेन्सवासियों को अपनी गल्ती का अहसास हुआ लेकिन अब क्या किया जा सकता था। सुकरात की भविष्यवाणी के अनुसार अभियोगकर्ताओं को फांसी दे दी गई। उनकी स्मति में उनकी स्माधि बनाई गई ताकि अपने गुनाह के लिए कुछ हद तक पश्चाताप किया जा सके।

सुकरात ने अपने जीवनकाल में अनेक जगह ज्ञान का बीज बिखरा दिया था। उनके जाने के बाद वह बीज अंकुरित होने लगा। सुकरात का व्यक्तित्व इतना विशाल था जिसे समझना हर एक के वश की बात नहीं थी। जिसने जैसा महसूस किसा वैसा ही प्रस्तुत किया। उनके कई शिष्य थे जिन्होंने उनके अन्दर अलग-२ तरह का रूप देखा। जैसा रूप देखा उसी का प्रचार और प्रसार होने लगा। सुकरात के कई मुख्य शिष्य थे।

एक था प्लेटो (अफलातून) जो ज्ञानी था जिसने अपना ज्ञान भी लिखा तो वह भी सुकरात के नाम से लिखा। वह गुरूमुख शिष्य था। ऐसा गुरूमुख शिष्य बिरला ही संसार में आता है लेकिन जब आता है तो वहां पर ज्ञान का एक अलग ही फूल खिलता है। वह दुनियां को कोई नई चीज देकर जाता है। प्लेटो सुकरात के ज्ञान से अत्यंत प्रभावित था। वह उन्हें ज्ञान और विवेक की मूर्ति समझता था। उनका दूसरा शिष्य था एन्टीस्थेनीज। वह एक बहुत बड़ा तपस्वी था। उसने सुकरात की फक्कड़ तबीयत देखी। उसने देखा कि सुकरात को खाने-पीने का होश नहीं है, न ही उसे किसी सुख-सुविधा से मतलब है बल्कि वह सुख-सुविधाओं से दूर भागता है, कष्ट का जीवन भोगता है लेकिन किसी से शिकायत नहीं करता है। वह पानी पीने के लिए केवल एक कटोरा रखता था। उसके पास शिष्य बनने के लिए बड़े-२ लोग आते थे लेकिन वह किसी को अपने पास नहीं फटकने देता था। उसके पास राजा आते थे लेकिन प्लेटो राजाओं के पास जाता था। उसे राजाओं और अमीर लोगों से कोई मतलब नहीं था। वह एक बड़ा चोगा पहनता था जिसे वह दिन में पहन लेता था तथा रात को ओढ़ लेता था। ऐसा भी नहीं था कि उसे ज्ञान नहीं था। एक बार उसके एक विरोधी ने कहा कि मैं तुझसे बदला जरूर लूंगा, यदि नहीं ले पाया तो आत्महत्या कर लूंगा। इस पर एन्टीस्थेनीज कहने लगा कि यदि मैं तुम्हारे अन्दर पहले की तरह प्रेम पैदा नहीं कर पाया तो मैं आत्महत्या कर लूंगा। इस बात से उनका दढ़ निश्चय और आत्म विश्वास झलकता है।

उसका एक शिष्य था डायोजिनीज जो ओर भी ज्यादा फक्कड़ तबीयत का था। वह रहने और सोने के लिए हाथ में एक टब रखता था और पानी पीने के लिये हाथ में एक प्याला। परन्तु एक बार एक लड़के को हाथों से पानी पीते देखा तो उसने अपना प्याला भी फैंक दिया। एक बार उसे कोरिन्थ में लेजाकर गुलाम बनाकर बेच दिया गया था लेकिन उसे किसी सज्जन आदमी ने खरीद लिया, शायद उसे दार्शनिक की

पहचान रही हो। कोरिन्थ में उसे बहुत प्रसिद्धि मिली। इतनी कि सिकन्दर महान जैसा बादशाह इनकी आगवानी के लिए कोरिन्थ पहुंचा। जब वह टब में लेटा हुआ था, तब सिकन्दर ने उससे पूछा कि क्या मैं आपके लिए कुछ कर सकता हूं, तो उसने जवाब दिया, अभी तुम इतना करो कि मुझ तक थोड़ी सी धूप आने दो जो तुमने रोक रखी है। यह सुनकर बादशाह कहने लगा कि यदि मैं सिंकदर न होता तो अवश्य ही डायोजिनीज बनना पसंद करता।

उनका तीसरा शिष्य था एरिस्टेपिस जिसने सायरेनिक सम्प्रदाय की स्थापना की। वह एक धनी पिता का पुत्र था। एक बार वह अपने पिता के साथ ओलम्पिक खेल देखने आया तो उसकी मुलाकात सुकरात के एक शिष्य के साथ क्या हुई कि उसका जीवन ही बदल गया। उसने सुकरात के अन्दर ऐसा रूप देखा जो आनन्द और मस्ती से भरपूर था। वह मत्यु को सामने खड़ा देखकर तनिक भी दु:खी नहीं हुआ। सुकरात कहते थे कि आत्मा आनंद की प्रकति है। बस यही बात एरिस्टेपिस ने गांठ बांध ली और घोषणा की कि मनुष्य का सर्वोच्च लक्ष्य अधिक से अधिक सुख प्राप्त करना है। यही सच्चा सदगुण है। उनका एक शिष्य एन्टीस्थेनीज कहता है कि सुख के नाम से भी दूर रहो और दूसरा शिष्य एरिस्टेपिस कहता है कि वहां झांकों भी मत जहां सुख न हो। जहां भी जाओ सुख की तालाश करो। वह शिष्य बनाने के लिए फीस वसूल किया करता था। उसने स्वयं भी फीस के रूप में सुकरात को कुछ धन दिया था जिसे सुकरात ने लौटा दिया था। वह कहता था कि जो मिलता है उसमें सुखी रहो, जो नहीं मिलता उससे दु:खी नहीं होना चाहिए, यह उसकी प्रमुख शिक्षा थी। वह जो कहता था उसका पूरी तरह से पालन भी करता था। वह पूछता था क्या बुद्धिमानी इसमें नहीं है कि हम लू के थपेड़ों में भी, विचलित न हों?

सुकरात का एक अन्य भक्त था जिसका नाम युक्लिड (प्रसिद्ध गणितज्ञ युक्लिड नहीं) था जिसने मेगारिक सम्प्रदाय की स्थापना की। वह

कहता था कि यहां जो भी है शुभ है, अशुभ कुछ भी नहीं है। इसके अतिरिक्त सुकरात के ओर भी कई शिष्य थे जिन्होंने अपने-२ सम्प्रदाय चला रखे थे और सुकरात की शिक्षा भिन्न-२ नामों से चारों तरफ फैल गई थी। इसका मुख्य कारण यही था कि सुकरात बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। वह जिस व्यक्ति के सम्पर्क में आते थे उसी पर बहुत गहरा प्रभाव छोड़ते थे। सिकन्दर द्वारा यूनान की हार के बाद उनका दर्शन रोम पहुंचा और वहां से उससे सारी इसाईयत प्रभावित हुई। इसाई धर्म कभी प्लेटो के दर्शन से प्रभावित हुआ तो कभी अरस्तु के दर्शन से और कभी जीनो की स्टोइक विचारधारा से, जो सभी सुकरात के बोये गए बीजों की पैदायश थे।

सुकरात की तरह ही जीसस भी बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। उनके असली स्वरूप के दर्शन ईसाईयत को उपलब्ध नहीं हुए। यदि वह आज होते तो ईसाई धर्म के धर्मगुरूओं को कठिनाई होती क्योंकि आज की ईसाई व्यवस्था में ईसा मसीह के दर्शन के लिए कोई स्थान नहीं है। ये कहावतें उनके दर्शन को इंगित करती हैं जिनको धर्म ग्रन्थों में शामिल नहीं किया गया है। पीटर और मैथ्यू को स्थान दिया गया है लेकिन थामस की ये कहावतें उतनी ही अजनबी हैं जितने की ईसा मसीह उस समय के यहुदी समाज के लिए अजनबी थे। उसी अजनबी समाज से आए हुए शिष्यों से जीसस पूछते हैं कि बताओ मैं तुम्हें किसके समान लगता हूँ? पहला शिष्य पीटर जो इसाई धर्म का स्तम्भ है वह कहता है -

Simon Peter said to him:

Thou art like a righteous angel.

साईमन पीटर मसीहा से कहता है कि आप एक आदर्श फरिश्ते के समान हैं। पीटर ने अपना एक पैमाना बना लिया है। जिसमें से वह अपने गुरू के गुणों को रख लेता है और माप कर कहता है कि आप एक न्याय परायण और आदर्श देवदूत के समान हैं। ऐसे बहुत से व्यक्ति आते

हैं जो अपनी अलग सोच लेकर आते हैं कि गुरू को हंसना नहीं चाहिए, उसे गंभीर होना चाहिए, उसे हंसी-मजाक नहीं करना चाहिए, ऐसे उठना चाहिए, वैसे खाना चाहिये इत्यादि। वे तराजू लेकर आते हैं, पैमाना लेकर आते हैं, एक सांचा बनाकर लाते हैं कि गुरू को उस सांचे से बाहर नहीं जाना चाहिए, नहीं तो शास्त्र और पुरोहितों द्वारा स्थापित की गई मान्यताएं खण्डित हो जाएंगी। स्वामी शंकराचार्य ने जब सन्यास लिया तो वेदान्तियों ने उनका भारी विरोध किया कि सन्यास तो जीवन के आखरी पड़ाव पर लिया जाना चाहिए। उससे पहले आश्रम की तीन अवस्थाओं में से गुजरना जरूरी है। यदि ऐसा न किया जाए तो हिन्दू शास्त्रों की आज्ञा का उल्लंघन होता है। उन्होंने छोटी उम्र में ही सन्यास ले लिया था। सन्यास लेने के बाद ब्राह्मण वर्ग ने उनके सामने शंका उठाई कि ग्रहस्थ आश्रम से पहले सन्यास नहीं हो सकता। शंकर ने कहा कि वर्णाश्रम समाज द्वारा बनाई गई व्यवस्था है। वह समाज के कल्याण के लिए ही बनाई गई है। अपने बनाए हुए नियमों के हम स्वामी हैं दास नहीं। ब्राह्मण कहने लगे कि व्यवस्था पालन से ही समाज टिकता है। यदि अपने बनाए गए नियमों को हम ही तोड़ने लगे तो फिर नियमों का उपयोग ही क्या है? शंकर ने कहा-व्यवस्था और नियम समाज के संघटन और जीवन के लिये हैं। यदि समाज के जीवन के लिये मर्यादा स्थापित करने की आवश्यकता है तो मर्यादा पुरूष श्री राम के समान मर्यादाएं बांधी जाती हैं और यदि मर्यादा उलंघन की आवश्यकता है तो पुरूषोत्तम श्री कष्ण की भांति मर्यादाएं तोड़ी भी जाती हैं। मर्यादाओं के बांधने और तोड़ने के पीछे एक ही भावना है और वह है समाज के संघटन की ताकि समाज के अस्तित्व की रक्षा की जा सके। व्यवस्था और नियम साधन हैं। साध्य नहीं। साधन तब तक लाभदायक हैं जब तक साध्य (लक्ष्य) को प्राप्त करने में सहायक हों। केवल लकीर पीटने से क्या लाभ। गहस्थ और सन्यास दोनों ही साधन हैं। मेरे पास गहस्थ के झंझट में पड़ने का समय नहीं है। कार्य इतना अधिक

और समय इतना थोड़ा है कि इसके सिवाय कोई मार्ग ही नहीं है। इसके अतिरिक्त बौद्ध अपने सन्यास की बड़ाई करते हैं और कहते हैं कि वैदिक धर्म में सन्यास है ही नहीं। उन्हें यह दिखाना है कि वैदिक धर्म में उनसे भी ऊंचा सन्यास है। सन्यास का रूप विकत कर दिया गया है, उसे सुधारना है। सन्यास धर्म का आदर्श मठ में पड़े रहना और समाज का भार बनकर जीवन व्यतीत करना नहीं है बल्कि लगातार कर्मबद्ध होकर कष्ट और दुःखों में रहते हुए भी लोगों की सहायता करना है।

इसी विषय पर उस समय के वैदिक धर्म के संरक्षक कुमारिल भट्ट के परम शिष्य मण्डन मिश्र और उनकी विदुषी पत्नी भारती के साथ अलग-अलग शास्त्रार्थ हुआ। मीमांसक यज्ञ को ही परमात्मा की प्राप्ति का साधन मानते थे। वे उनके पंचायतन सिद्धांत को मानने के लिए भी तैयार नहीं थे। शंकर ने कहा - सारा जीवन और सारे कर्म ही यज्ञ हैं। यद्यपि हवन-यज्ञ आदि का भी महत्व है लेकिन ये सब साधन हैं। साधन देश और समय के अनुसार बदल जाते हैं। किसी देश और काल में गेहूं खाकर शरीर स्वस्थ रहता है तो किसी में चावल खाकर। नदी का मार्ग नदी की इच्छा पर नहीं बल्कि पथ्वी की सतह की समतलता पर निर्भर है, लेकिन फिर भी नदी का ध्येय, उसके जीवन की प्रवति और उसका धर्म संमुद्र से मिलना है। उसे कोई रोक नहीं सकता है। यदि किसी ने उसे रोकने की कौशिश की तो उसे नष्ट होना पड़ेगा। आज गंगा की गड़गड़ाहट सुनाई न दे तो दुःख मानने का कारण नहीं है, शांत कल-कल की ध्वनी भी गंगा की ही है। पिछले एक हजार वर्ष में गंगा के बदले हुए स्वरूप के कारण हमें भय खाने की आवश्यकता नहीं हैं। बालक की कोमलता का स्थान यदि नौजवान की ताकत और कठोरता ने लिया है तो उस बालकपन की कोमलता के लिए रोने का कोई कारण नहीं है और ना ही बनावटी चीजों से उसे पैदा करने की जरूरत है बल्कि यह तो समय की एक आवश्यकता है। हजार वर्षो में हमने जिन प्रवतियों का विकास किया है वह न तो नष्ट

की जा सकती हैं और न ही नष्ट करने की जरूरत है। इसलिये वैदिक जीवन हमारी संस्कति का आधार है और संस्कति देश की आत्मा है लेकिन यदि आत्मा ही नष्ट हो गई तो शरीर संभव नहीं है। राजनीति तो शरीर है। यदि शरीर में बिमारी लग जाती है तो आत्मा उसे ठीक कर सकती है, परन्तु यदि आत्मा ही नष्ट हो जाएगी तो कुछ नहीं बचेगा। बौद्ध लोग शक और हूण जैसे विदेशी आक्रमणकारियों को अपना रहे हैं, देश नास्तिक हो रहा है इसलिये समस्त राष्ट्र को एक होना पड़ेगा। पिछली प्रवतियों की रक्षा करते हुए नए का विकास करना होगा।

मण्डन मिश्र और भारती ने सन्यास ग्रहण किया और उनके शिष्य बन गए। चारों तरफ शंकर की चर्चा होने लगी। इस शास्त्रार्थ से पहले शंकर ने प्रयाग में बड़ी विजय पाई थी। यह विजय थी कुमारिल भट्ट के दूसरे शिष्य और प्रकाण्ड पण्डित प्रभाकर आचार्य पर। वे भी उनके शिष्य बन गये थे।

शंकर को इतना विरोध इसलिए सहन करना पड़ा कि धर्म को एक विशेष प्रकार की व्याख्या दे दी गई थी। उसका स्वरूप निश्चित कर दिया गया था। जबकि धर्म नित्य नई सम्भावनाओं और चुनौतियों को लेकर आता है। इसलिये समय के साथ-२ साध्य को प्राप्त करने के लिये साधन को बदलना पड़ता है। बाहरी चोला बदलता जाता है लेकिन आत्मा अपने प्रज्ञा और सनातन स्वरूप में स्थिर रहती है।

ईसा मसीह ने भी समय की आवश्यकतानुसार यहुदी समाज की रूकी हुई सोच को गति देने के लिए धर्म का बाहरी चोला बदलने का प्रयत्न किया जिसे रूढ़ीवाद और अंधविश्वासों ने घेर लिया था और जो मैला हो गया था। सेंट पीटर उसी मसीह के स्वभाव को निश्चित कर रहे हैं तथा वे अपने इस प्रयत्न में कामयाब भी हो गए हैं क्योंकि अमेरिका के शहर न्यूयार्क में सन् 2000 में आयोजित सर्वधर्म सम्मेलन (Millenium summit) में इसाई धर्म के पोप द्वारा एक फरमान जारी किया गया कि

मुक्ति केवल कैथोलिक चर्च के द्वारा ही सम्भव है। जो कैथोलिक चर्च के अनुयायी हैं केवल वही मुक्ति के अधिकारी हैं बाकी नहीं। यही बातें धार्मिक दंगों और साम्प्रदायकिता का कारण बनती हैं, धार्मिक कट्टरपन को बढ़ावा देती हैं। जीसस की व्यापक शिक्षाओं को सीमित दायरों में कैद करती हैं।

शिष्य गुरू के पास जाते हैं, उनमें से काफी ऐसे होते हैं जो गुरू के अन्दर विद्यमान अच्छाई की पहचान नहीं करते बल्कि बुराईयों को ढूंढने की कोशिश करते हैं।

मेरे सद्गुरू कहते थे कि यदि गुरू लोभी है, लालची है तो उसे छोड़ देना चाहिए। यदि वह विषय-विकारों, शराब-कबाब में फंसा हुआ है तो उसे भी छोड़ देना चाहिए। यदि गुरू अन्तर की मंजिलों का रहबर नहीं है और शब्द-भेद से भी वाकिफ नहीं है तो उसे छोड़ने में कोई पाप नहीं है। यदि वह औरतों और लड़कियों से पैरों को हाथ लगवाता है या पैर दबवाता है तो वह भी त्यागने योग्य है। इसके साथ-साथ यह भी कहते थे कि गुरू क्या करता है उसका ख्याल नहीं करना चाहिए बल्कि वह क्या करने के लिए कहता है वह महत्वपूर्ण है क्योंकि कभी-२ वह सामने वाले मनुष्य के स्वभाव और प्रवति को देखकर उपदेश करता है और उसी के अनुसार व्यवहार करता है जो शायद दूसरों के लिए कारगर न हो, माफिक न आए।

लेकिन जब गुरू और शिष्य का संयोग होता है तो सारी बातें धरी रह जाती हैं दिल दिल की गवाही देने लग जाता है, इसके सिवाये कुछ दिखाई नहीं देता। इसलिये आध्यात्मिक मामला बड़ा पेचिदा है, इसे किसी परिभाषा में बांधना बड़ा कठिन है। इसका उदाहरण है स्वामी विवेकानन्द और रामकष्ण परमहंस का मिलाप। रामकष्ण परमहंस स्वामी विवेकानन्द के गुरू थे। उनका खाने के प्रति बड़ा मोह था। वह अपनी पत्नी को माता कहते थे क्योंकि उनके अंदर मां काली का रूप प्रकट हो गया था। जब

वह कोई स्वादिष्ट खाना बना रही होती तो सत्संग में से उठकर रसाईघर में पहुंच जाते। या जब वह कोई चीज लेकर आती तो सत्संग छोड़कर बीच में खाने लग जाते। जो गुरू के अन्दर एक आदर्श फरिश्ता ढूंढते उनके लिए स्वामी परमहंस के निकट रहना कठिन होता। लेकिन वे तो स्वामी विवेकानंद थे जो सच्चे ग्राहक थे और जिनको उनके अन्दर सच्चाई की झलक दिखाई दे गई थी। जब परमहंस ऐसा करते तो उनकी पत्नी कहती कि महाराज आप सत्संग करते हैं और साथ में बच्चों जैसी हरकत करते हैं। आपके शिष्य ऐसी बातें देखकर आहत होते हैं। वे अपनी पत्नी से पूछने लगे कि तूने मुझको इस दुनिया में रखना है या नहीं? पत्नी कहने लगी कि महाराज ये आप क्या कह रहे हैं, इस बात का आपके रहने और न रहने से क्या सम्बन्ध है? परमहंस ने कहा कि मेरी हर तरफ से वति टूट चुकी है। केवल एक इस चीज के सहारे संसार में टिका हूँ। जिस दिन मैं तुम्हारे बनाए गए पकवान की तरफ उठ कर नही चलूं उस दिन समझ लेना कि मेरा आखरी वक्त आ गया है क्योंकि इस जमीन पर, इस संसार में रहने के लिये किसी वस्तु या विचार के साथ जुड़कर रहना पड़ेगा। कोई न कोई छोटी-मोटी वासना रखनी पड़ेगी वरना ये आत्मा इस संसार में रह न सकेगी। कहते हैं कि वैसा ही हुआ। एक दिन जब उनकी पत्नी खाना लेकर आई तो उन्होंने उस खाने की तरफ देखा ही नहीं। उनकी धर्मपत्नी को वह बात याद आ गई, याद आते ही थाली हाथ से छूट गई और अगले ही दिन वे शरीर छोड़कर चले गये।

महान पुरूषों का कोई सांचा नहीं बनाया जा सकता है। उनके अन्दर असीम संभावनाएं जन्म लेती हैं और कर्म के रूप में आकार ग्रहण करती हैं। आत्मा का ज्ञान आवश्यकतानुसार जो भी करवट लेता है वही कार्य बनकर प्रकट हो जाता है। उसे किसी नाम व रूप में नहीं बांधा जा सकता है।

साइमन पीटर जीसस को एक आदर्श फरिश्ते के रूप में स्थापित

करना चाहते थे। इसाई चर्च उन्हीं की बातों को आधार बनाकर आगे बढ़ा है। वे कहते हैं कि जीसस कुंवारी लड़की से पैदा हुए और वह भी बिना किसी मनुष्य के सम्पर्क में आए। यह कैसे सम्भव हो सकता है? लेकिन पीटर की नजरों में कामवासना पाप है, यदि जीसस माता-पिता की काम वासना की पैदायश है तो वह उनको मान्य नहीं है क्योंकि काम वासना में जाना एक साधारण व्यक्ति का कार्य है। एक आदर्श और न्यायपरायण फरिशते के लिए यह कैसे सच हो सकता है। इसलिए इसाई धर्म मनुष्य के अन्दर का धर्म नहीं है बल्कि वह एक मोरल धर्म बनकर रह गया है। जीसस ने कहा था कि ईश्वर का साम्राज्य मनुष्य के अन्दर है लेकिन चर्च के उच्चाधिकारी कह रहे हैं कि अन्तर में खुदा को ढूढंना गल्त है। उन्हें ध्यान तथा मेडीटेशन करने की मनाही कर दी गई है। वे कहते हैं ध्यान में जाना शैतान का कार्य है। वह तो केवल चर्च में वास करता है। उन्हें भय है कि मनुष्य अन्तर में चला जाएगा तो वह स्वतंत्र हो जाएगा, चर्च और पोप के नियमों को मानने से इंकार कर देगा। कहा जाता है कि मुक्ति केवल चर्च से ही मिल सकती है लेकिन मनुष्य यदि मुक्त हो जाएगा तो क्या वह किसी धर्म या संस्था पर निर्भर रह सकेगा। निर्भर होने का अर्थ है दास होना और दास कभी भी मुक्त नहीं हो सकता है। इसलिये जीसस की शिक्षाओं का इससे बड़ा अनर्थ नहीं हो सकता है।

क्या मुक्ति मरने के बाद ही मिल सकती है? यदि जीवन में मुक्ति का अनुभव नहीं किया गया तो मत्यु के बाद हम मुक्त कैसे हो सकते हैं। यदि जागत में मनुष्य मुक्त नहीं है तो वह स्वप्न में मुक्त कैसे रह सकता है। क्या यह सम्भव है? यदि जागत में भयभीत है तो वह स्वप्न में निर्भय कैसे रह सकता है। यह सम्भव नहीं है। कदापि नहीं। इसलिये हमें इसी जीवन में परमात्मा के साम्राज्य का अनुभव करना होगा और वह होगा स्वयं की चेतना के अन्दर डुबकी लगाने से। इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है।

दूसरे शिष्य हैं मैथ्यू । उसे ज्ञान की खोज की। वह ज्ञानी था।

उसने जीसस को क्या कहा -

Matthew said to him:

Thou art like a wise man of understanding

उसने कहा कि आप एक बुद्धिमान व्यक्ति के समान हैं जो उत्तम समझ रखता है। उसके लिये बुद्धि का ज्ञान सर्वोपरि था क्योंकि वह एक ज्ञानी व्यक्ति था। वह चिन्तन में विश्वास रखता था। चिन्तन एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, चिन्तन के द्वारा ही विज्ञान आगे बढ़ता है और विज्ञान शक व संदेह का विषय है। यदि शक नहीं है, डाऊट नहीं है तो वैज्ञानिक कभी खोज नहीं कर सकता है। वह वस्तु के हर पहलू पर विचार करता है तभी किसी निर्णय पर पहुंचता है। शक करना उसकी नियति है, उसकी जरूरत है। जबकि विज्ञान और धर्म एक ही वस्तु के दो पक्ष हैं। एक संशय से आगे बढ़ता है तो दूसरा श्रद्धा और विश्वास से। विश्वास के बिना तो एक डाक्टर अपने मरीज को भी ठीक नहीं कर सकता है। फिर धर्म तो अन्तरतम तत्व है जहां द्वैतभाव और संशय के लिए कोई स्थान नहीं है। जहां संशय है वहां द्वैष और क्लेश भी अवश्य होगा। इसलिये वहां आत्मिक साक्षात्कार की संभावना समाप्त हो जाती है।

श्री अरविन्द ज्ञान की परिभाषा करते हुए कहते हैं कि बुद्वि का ज्ञान या पुस्तकों का ज्ञान वास्तविक ज्ञान (Real Idea) नहीं है बल्कि यह तो उस आन्तरिक ज्ञान का विकत रूप है। जब तक हम चिन्तन के संसार में विचरते हैं तब तक हमारी पहुंच सापेक्ष (Relative) संसार में है और सापेक्ष संसार नाशवान (perishable) है, परिवर्तनशील (mutable) है, स्थूल (tangible) है। वास्तविक ज्ञान निरपेक्ष है उसमें संशय के लिए कोई स्थान नहीं है। जब बाहरी ज्ञान चूक जाता है तब आन्तरिक ज्ञान का उदय होता है। आत्म साक्षात्कार के बाद जब भक्त कण-२ में परमात्मा का अनुभव करने लगता है वही ज्ञान की पराकाष्ठा है। वासुदेवः सर्वम् इति-अर्थात् सब जगह वासुदेव ही वासुदेव दिखाई देने लगते हैं। फिर कहते हैं - यस्मिन विज्ञाते सर्वम् विज्ञातम् अर्थात् ऐसा जानने के बाद

व्यक्ति सर्वज्ञानी हो जाता है।

चिन्तन, ज्ञान, मनन, अध्ययन आत्म ज्ञान के लिए आवश्यक नहीं हैं। ओशो कहते हैं कि बुद्धि परमात्मा के मिलन में सबसे बड़ी बाधा है। उस अनुभव के लिए सब कुछ भूलना पड़ता है क्योंकि जब तक सब कुछ नहीं भूलते हैं तब तक एकल्व में नहीं आ सकते और जब तक एकल्व में नहीं आते तब तक मिलन नहीं हो सकता। जब तक समझने का प्रयास है तब तक हम समझ की दीवारों को नहीं लांघ सकते हैं और परमात्मा सभी दिवारों के परे हैं, क्योंकि वह असीमित हैं, अपरिमित है। जब सारी दिवारें गिरती हैं, घेरे टूटते हैं, कहने, सुनने और समझने का प्रयास समाप्त होता है तभी उसका साम्राज्य आरम्भ होता है।

मैथ्यू जीसस को समझ और बुद्धि की दीवारों में कैद करने का प्रयास कर रहे हैं। वे कहते हैं कि आप एक समझ वाले बुद्धिमान व्यक्ति के समान हैं। स्पष्ट है कि मैथ्यू जीसस के अन्दर एक बच्चे का गुण व चरित्र देखने में सक्षम नहीं हैं क्योंकि बच्चा समझ और बुद्धि दोनों से दूर रहने की कोशिश करता है लेकिन जीसस कहते हैं कि बच्चे के समान बनो। इसलिये मैथ्यू के लिए कठिन है उन्हें समझना। जीसस के मुख से केवल ज्ञान और समझ की बातें निकलनी चाहिएं, यदि उन्होंने बच्चे की तरह व्यवहार किया तो उसके लिए कठिनाई हो जाएगी। उसने भी अपना एक सांचा बना लिया है और जीसस उस सांचे में फिट नहीं बैठ रहे हैं। यह शिक्षा जीसस की मुख्य शिक्षाओं में से है कि बच्चा बनो क्योंकि बच्चा सभी के अन्दर है। बुजुर्ग है या जवान है बच्चा सभी के अन्दर जिन्दा है। यदि उस बच्चे को उभरने से रोक दिया जाए तो जीवन को जीने के लिये हमें झूठ का सहारा लेना होगा। बनावटी बनना होगा। स्वछंद भाव को दबाना होगा, फिर मुक्ति सम्भव कैसे हो सकेगी। जिस व्यक्ति के अन्दर बच्चा जीवित नहीं है वह रचनात्मक नहीं हो सकता, क्रीयेटिव नहीं हो सकता है। डायनेमिक नहीं हो सकता है। लेकिन ज्ञानी व्यक्ति उस बच्चे को अन्दर

से उभरने से रोकता है। उसे दबाता है क्योंकि यह तो प्रेम का हिस्सा है। प्रेम की अभिव्यक्ति हो गई है। बच्चे के समान होना कोई सरल कार्य नहीं है। बच्चे में कई गुण विशेष होते हैं जो आत्म-साक्षात्कार के लिए आवश्यक हैं।

बच्चा निरपराध (innocent) होता है । वह अपराध भावना से ग्रसित नहीं होता, उसे अपराध बोध नहीं होता। यदि वह कोई गल्ती करके भी आए तो उसे याद नहीं रहती। वह सरल हृदय होता है, उसमें चालाकी नहीं होती। गल्ती करता है, मार खाता है फिर भूल जाता है, फिर बार-२ वही गल्ती करता है। इसलिये शास्त्रों ने कुछ आयु से नीचे के बच्चे के अपराध को माफ कर दिया है, उसे अपराधी नहीं माना जाता है। कानून भी बच्चे के अपराध में ढील बरतता है। लेकिन जब उसे अपनी गल्ती याद रहने लगती है तब वह बच्चा नहीं रहता। वह गल्ती उसकी चेतना की चादर पर दाग बनकर हमेशा चिपकी रहती है और उसके अपराध को सारा जीवन याद दिलाती रहती है। उसके संस्कार और परिणाम से वह बच नहीं सकता है। फिर वह उसके कर्मो का लेखा बन जाता है।

दूसरा बच्चे के अन्दर एकाग्रता होती है। यदि वह खेलता है तो अपने आपको खेल में पूरी तरह से झोंक देता है। खेलते हुए वह सब कुछ भूल जाता है। यदि वह थक कर आ गया और उसे पता चल जाए कि खेल फिर शुरू हो गया है तो वह एक दम भाग कर ऐसे चला जाता है जैसे उसे कोई थकान थी ही नहीं। यही एकाग्रता, कन्सन्ट्रेशन या इन्टिग्रेशन समाधि का दूसरा नाम है। वह बच्चे के अन्दर स्वतः ही होती है, उसके स्वभाव में होती है। बड़ा होने के साथ उसमें इसकी कमी आती चली जाती है। मन की भटकन बढ़ जाती है।

तीसरा वह बहुत जल्दी विश्वास कर लेता है। वह आपकी बात को तुरंत मान लेता है। यदि आप उसे बातों में लगाकर या उसे प्यार दिखाते हैं तो वह तुरंत आप पर विश्वास कर लेता है। श्रद्धा और विश्वास ही

धर्म की जान है। यह बच्चे के अन्दर भरपूर होते हैं। वह निश्चल प्रेम के बिना सम्भव नहीं है। भक्त के अन्दर का यही गुण उसे प्रेमी (परमात्मा) से मिलाने में अचूक दवा का काम करता है। संशय की जड़ प्रेम ही काट सकता है। इसके अतिरिक्त इसकी कोई दवा नहीं है।

चौथा बच्चे के अन्दर हमेशा सीखने (Always learning) की प्रवति होती है। आप कुछ बात करें तो क्यों, कैसे, कब उसके प्रश्न होते हैं। वह कभी शर्म महसूस नहीं करता है। उसे पता है कि वह कुछ नहीं जानता। काश हम जान पाते कि हम कुछ नहीं जानते। सारा जीवन ही सीखने की प्रक्रिया है। जितना सीखें जीवन उतना ही कम पड़ता है। लेकिन बड़ा व्यक्ति पूछते हुए शरमाता है या अपनी शान के खिलाफ समझता है। यह प्रकति चेतना के बहाव में, उसकी उन्नति में बाधा बनती है। अध्यात्म के दो अक्षर पढ़कर हम ज्ञानी बन जाते हैं और वैसा ही व्यवहार करने लगते हैं। ऐसा होते ही बच्चे का यह गुण लुप्त हो जाता है और चेतना की चढ़ाई में रूकावट आ जाती है।

जब तक मनुष्य बच्चा नहीं बनता तब तक उसके अंदर ये गुण नहीं आते हैं और मैथ्यू के अन्दर इसकी संभावना बहुत ही कम है। जीसस का एक शिष्य था जुडास। ईसा मसीह कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक औरत मिली जो उनसे बहुत प्रेम करती थी। कहते हैं जिस समय उन्हें सूली तोड़ा गया तो उनके बारह के बारह शिष्य भाग गए थे। केवल तीन औरतें वहां मौजूद थी जिन्होंने उन्हें सम्भाला और सूली से उतारा। वह औरत उनमें से एक थी। वह औरत समाज में ऐसा पेशा करती थी जो इज्जत का पेशा नहीं था लेकिन जीसस को वह बहुत मानती थी। चलते-२ वह उसके घर के सामने पहुंच गए। वह औरत प्रेम में आकर रोने लग गई। जुडास कहने लगे कि वह औरत पापिन है, दुराचारी है इसके पास नहीं जाना चाहिए। लेकिन जीसस उसके विरह को देखकर उसके घर के अन्दर जाए बिना नहीं रह सके। जब अन्दर गए तो उस औरत ने अपना कीमती

से कीमती इत्र और दूसरा खुशबूदार सामान उठाया और जीसस के चरण धोने लगी। जुडास से यह सहन न हो सका। वह कहने लगा कि देखो यह पागल हो गई है, अपना कीमती सामान बरबाद कर रही है। और कैसे हैं जीसस जो यह सब सहन कर रहे हैं। यदि इतने पैसे किसी गरीब को दे दिये जाते तो उसे कई दिनों तक भोजन मिलता। जीसस उसे कहने लगे कि हे जुडास! गरीबी और दुःख तो जब तक यह दुनियां है तब तक रहेंगे लेकिन इसके अन्दर का जो मैल आंसुओं और इस इत्र के द्वारा धुल रहा है वह तुझे नहीं दिखाई दे रहा है। इसके अन्दर जो फूल खिल रहा है वह नजर नहीं आ रहा है। इसे अपनी खुशी पूरी करने दे। इसकी यह संतुष्टि समाज में महक पैदा करेगी। यह एक गरीब की नहीं बल्कि अनेक गरीबों की मदद करेगी। इसके अन्दर के दाग धुल रहे हैं इसके बाद वह समाज का मैल धोने का कार्य करेगी।

मैथ्यू भी एक ज्ञानी व्यक्ति था। ऐसे व्यक्ति बुद्धि के द्वारा संत या गुरू की मापतोल करते हैं जो सम्भव नहीं है। पहले शिष्य पीटर स्थूल व्यक्ति थे जो बाहरी अभिव्यक्ति को मुख्य समझते थे। उनके लिए जीसस ऐसे व्यक्ति हैं जो आदर्श स्थापित करते हैं, मार्यादा स्थापित करते हैं। साइमन पीटर को आन्तरिक ज्ञान से अधिक सरोकार नहीं है इसलिए वह एक असम्भव आदर्श को स्थापित कर गए हैं कि जीसस ने कुंवारी के गर्भ से जन्म लिया। उनके लिए कामवासना पाप है और जीसस ऐसे पाप की औलाद कैसे हो सकते हैं। आदर्श स्थापित होना चाहिए। अन्दर में मैल कितना भी हो लेकिन बाहर से सफाई दिखाई देनी चाहिये। दूसरे शिष्य हैं मैथ्यू जो कुछ सूक्ष्म हैं। वे ज्ञानी हैं उन्हें जीसस के अन्दर एक बुद्धिमान व्यक्ति नजर आता है। तीसरे शिष्य हैं थामस जो प्रेमी हैं, जीसस से प्रेम करते हैं। वे क्या कहते हैं -

Thomas said to him:

Master, my mouth will not be capable of saying

whom thou art like.

थोमस कहता है कि मेरे स्वामी! मेरी जुबान इस योग्य नहीं है कि आपके बारे में कुछ भी कह सके। उसकी कोई रेंज नहीं थी, कोई सांचा नहीं था जिसमें वह अपने स्वामी को बांध सकता। उसे जीसस हर रूप में स्वीकार्य है। यदि वह आदर्श फरिश्ता है उसे स्वीकार्य है, वह ज्ञानी है, प्रेमी है तो भी उसे स्वीकार्य है। जीसस के अन्दर जो भी सम्भावनाएं हैं वे उसने स्वीकार कर ली हैं। लेकिन उससे एक ही गल्ती हूई कि वह बोल गया और कहने लगा कि मैं इस योग्य नहीं हूं कि आपके बारे में कुछ कह सकूं। न कहते हुए भी बहुत कुछ कह गया। वह स्वामी से ज्यादा स्वयं को प्रकट कर गया। उसने स्वयं को और स्वामी को शब्दों में बांध दिया। जीसस को किसी भी शब्द में कैसे बांधा जा सकता है? वह तो व्यक्त (manifested) होकर भी अव्यक्त (unmanifested) हैं। विचार या शब्द भी किसी वस्तु को आकार में बांधते हैं। जीसस को किसी भी आकार में कैसे बांधा जा सकता है।

कोई भी विचार है उसका विरोधी विचार भी अवश्य होता है। कोई भी शब्द लें उसका विरोधी शब्द भी अवश्य होता है। इसके बिना संसार की कोई भी वस्तु जो प्रकट रूप में मौजूद है अस्तित्व में न आ सकेगी। उसका कोई अर्थ नहीं हो सकेगा क्योंकि दष्यमान संसार में सापेक्षता (Relativity) का सिद्धान्त कार्य करता है। जहां सापेक्षता है वहीं वस्तु गुणी हो जाती है वह डिग्री या ग्रेड में बंध जाती है और जीसस परमार्थिक दष्टि से किसी भी गुण, डिग्री या ग्रेड का विषय नहीं हैं। वे गुणी होते हुए भी सब गुणों से परे हैं।

थामस ने जीसस को शब्दों में बांध दिया है। और जो शब्द बोल दिये गए वही झूठ है क्योंकि जिस किसी वस्तु का विरोधी स्वरूप विराजमान है वह नाशवान है, क्षणभंगुर है। इसीलिए शंकराचार्य सत्ता को, अस्तित्व को तीन भागों में बांटते हैं। व्यावहारिक, परमार्थिक और प्रतिभासित।

जो स्वप्न या भ्रम में सत्य हैं जैसे रस्सी को सांप समझ लेना (प्रातिभासित), वह व्यवहार (जागत) में असत्य है और जो इन दोनों स्तर पर सत्य प्रतीत होता है वह परमार्थिक दष्टि से फनाह है। महावीर स्वामी किसी भी वस्तु के सात रूप प्रस्तुत करते हैं जिसे अनेकान्तवाद कहा जाता है। इसलिये उर्जा के एक स्तर पर जो हमें सत्य प्रतीत होता है, दूसरे स्तर पर वही असत्य भी है।

चीन के ताओ धर्म के प्रवर्तक लाओत्से बहुत ही कम बोलते थे। उन्हें बोलने के लिए कहा जाता लेकिन वे कुछ बोलते ही न थे। कहते थे कि जो भी बोलूंगा वही झूठ होगा इसलिये न बोलना ही अच्छा होगा। उनसे बार-बार अपने जीवन का अनुभव लिखने के लिए कहा गया लेकिन वे कोई जवाब न देते। बार-बार पूछने पर कहते कि जो भी लिखा जाएगा वही झूठ होगा। चीन के सम्राट चाहते थे कि उन्होंने आजीवन इतना ऊंचा आध्यात्मिक जीवन जीया है यदि वह कलमबद्ध हो जाए तो आने वाली प्रणाली को इसका लाभ मिल सकेगा, लेकिन वह थे कि कुछ भी लिखने को तैयार ही न थे। कुछ लिखने के लिये उन पर दबाव बढ़ता गया। वह परिस्थिति उन्हें अच्छी नहीं लगी। वे स्वछंद प्रकति के साधु थे। रात को उठे और अपनी कुटिया छोड़कर किसी अज्ञातवास पर चल पड़े। सुबह होते ही पता चला तो सम्राट के पास खबर पहुंची। खबर पहुंचते ही उसने चारों तरफ संदेश भिजवाया कि उस साधु को राज्य से बाहर न जाने दिया जाये। उसके ऊपर राज्य का ऋण है। उसने राज्य का अन्न और जल ग्रहण किया है उससे वह ऋण वसूल किया जाये। राज्य की सीमा पर लाओत्से को पकड़ लिया गया और ऋण की अदायगी करने के लिये कहा गया। उसने कहा कि मेरे पास तो कुछ भी नहीं है, न शरीर पर कपड़े हैं, न पैरों में जूती और न ही कोई धन सम्पति है जिससे ऋण की अदायगी की जा सके। राजा ने कहा कि तू राज्य का सबसे धनी आदमी है, तेरे पास जो दौलत है वह राज्य में किसी के पास भी नहीं है। तू आत्म-सन्तुष्टि

का मंत्र जानता है, तेरे पास आध्यात्मिक दौलत का खजाना है। तुझे उसमें से कुछ अवश्य ही दान करना पड़ेगा और उसका सबसे सरल तरीका यह है कि तू अपना अनुभव लिख जिससे दूसरे भी इस विद्या को जान सकें और जीवन में संतुष्टि प्राप्त कर सकें। कहते हैं कि उस समय उन्होंने अपने जीवन की एक मात्र पुस्तक 'ताओ-ते-चिंग' लिखी।

ताओ का अर्थ है मार्ग (way)। ताओ के अनुसार प्रकति ही हमारा सबसे बड़ा शिक्षक है। प्रकति के साथ प्यार करो। स्वयं को प्रकति के समर्पित करो। हमें एक विनम्र शिष्य की तरह प्रकति के अन्दर उठ रहे शांत बहाव को केवल देखना और सुनना चाहिये। केवल देखो और सुनो। सोचो मत, तर्क भी मत करो। प्रकति के अन्दर एक आध्यात्मिक संदेश है, यदि हम उसके रास्ते पर चलें तो वह हमारे व्यक्तित्व को अपने रस और आलोक से लबालब भर देगा।

जीसस के तीनो शिष्यों ने अपने-२ स्वभाव के अनुसार जवाब दिया। उनके पास काई चौथा शिष्य नहीं था जो मात्र चुप रहता। कुछ न बोलता। थामस से यह गल्ती हो गई कि वह बोल गया। सतगुरू के सामने यदि बोलने की आवश्यकता है तो इसका अर्थ है हम उन्हें कुछ बताने का प्रयत्न कर रहे हैं जो उनको दिखाई नहीं दे रहा है। साथ-२ हम चोरी भी कर रहे हैं। जिसके प्रति चोरी की जाती है उसके प्रति अन्तर में विरोध भी अवश्य होता है, लगातार उसके साथ एक संघर्ष चलता रहता है। हो सकता है हम इसका आभास न कर पाएं लेकिन एक नकारात्मक सोच मन में कार्य करती रहती है जो अपने समय पर प्रकट हो जाती है।

जीसस ने तीनों शिष्यों से पूछा-तीनों ने अपना-२ मंतव्य प्रकट किया। उसके बाद वे क्या कहते हैं?

Jesus said:
I am not thy master, because thou hast drunk,
thou hast become drunk from the bubbling spring

which I have measured out.

उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारा गुरू नहीं हूं। कितना स्पष्ट है जवाब। स्पष्ट है कि अपने शिष्यों के साथ उनका व्यवहार कितना बेलाग रहा होगा। गुरू और शिष्य के आजकल के व्यवहार में लगता है कि दोनों ही एक दूसरे को अपनी तरफ खींचने में लगे हुए हैं। मेरे सद्गुरू कहते हैं -

गुरू लोभी शिष्य लालची दोनों खेलें दाव।
अधबीच में डूब गई थी पत्थर की नाव।।

गुरू और शिष्य दोनो ही लालच व स्वार्थ के वश हैं। दोनों ही एक दूसरे को वश में करने को लगे हुए हैं। अतः दोनों का अधोपतन निश्चित है। लेकिन जीसस की बात स्पष्ट है कि मैं तुम्हारा मास्टर नहीं हूं। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि वे कितने क्रांतिकारी रहे होंगे क्योंकि क्रांतिकारी व्यक्ति कोई लागलपेट नहीं रखता। वह स्पष्ट होता है और दूसरों से भी स्पष्ट होने की आशा रखता है चाहे इसके लिये उसे अपनी जान की कुर्बानी ही क्यों न देनी पड़े। उन्होंने स्वयं की कुर्बानी दी लेकिन ऐसी क्रांति उठाई जिसने सहज ही रूकने का नाम नहीं लिया जिसकी आंधी की लपेट में देखते-२ संसार का अधिकतर हिस्सा आ गया।

जीसस शिष्यों को कहते हैं कि मैं तुम्हारा सद्गुरू नहीं हूं, तुमने शराब पी रखी है। शराब भी ऐसी जो झरने के बुलबुलों से प्राप्त होती है। इससे कई बातें स्पष्ट होती हैं। एक तो यह कि शिष्य जीसस के साथ रहते हुए भी होश में नहीं हैं। नशे में रहते हैं, बेसुध हैं। दूसरा वे बुलबुलों के समान अस्थिर हैं, मन से चंचल हैं। तीसरा बुलबुले सतह पर बनते हैं। इसलिये वे बाहरी रूप से जीसस के साथ-२ घूमते हैं लेकिन आन्तरिक रूप से उनका रूपान्तरण नहीं हो सका है। वे चेतना की सतह पर निवास करते हैं। चौथा यह कि वे आंशिक रूप से स्रोत के निकट तो हैं लेकिन पूर्ण रूप से उसका लाभ नहीं उठा पाए हैं। उन्हें झरने की ठण्डक तो मिल रही है लेकिन पानी के वास्तविक स्रोत से दूर हैं। झरने से बालू के रेतीले टीबों

में कुछ हरियाली तो पैदा की जा सकती है, ओएसिस बन सकते हैं लेकिन दूर-२ तक फसलें और हरियाली पैदा नहीं की जा सकती है। तात्पर्य यह है कि वे जीसस की मौजूदगी से स्वयं तो कुछ लाभान्वित हो रहे हैं, आनंद ले रहे हैं लेकिन समाज के अन्दर उस आनंद व सुख को ले जाने में सक्षम नहीं हैं। लोगों को इसका लाभ मिल सके, उस ज्ञान से उन्हें परिचित करवाया जा सके, ऐसी योग्यता उनमें नहीं है। उनके अन्दर आत्मा का ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है, असली स्रोत अन्तर में नहीं खुल पाया है जिसकी मस्ती की महक स्वयं ही दूर-२ तक फैल जाती है। वे जीसस की बैशाखियों के सहारे चल रहे हैं, स्वयं के स्वामी नहीं बन पाए हैं। जीसस के साथ रहते हुए भी स्वर्ग के साम्राज्य से वंचित हैं।

जीसस आगे कहते हैं -

thou hast become drunk from the bubling spring
which I have measured out.

कहते हैं कि तुम उस ज्ञान की बातें कर रहे हो जो मैंने तुम्हें बताई हैं। उस ज्ञान का वर्णन कर रहे हो जिसकी पैमायश कर दी गई है। अब भी कर दी गई और पहले भी की जा चुकी है। उनके अन्दर ज्ञान का स्वतः प्रवाह जिसे जैन मत में सम्यक दर्शन (Right faith) कहा गया है वह नहीं पनप सका है जब ज्ञान की चेतना प्रवाह बन कर बहने लगती है। शब्दों के ज्ञान में तो बीच-२ में रूकना पड़ता है, विराम लगाना पड़ता है लेकिन उस अनहद शब्द में कोई भी विराम नहीं है क्योंकि वह बोलता नहीं है, वर्णात्मक नहीं है, केवल होता है, धुनात्मक है। यदि बोलता होता तो फिर बीच में विराम आ जाता। वह केवल बहता है, इसे केवल देखा जा सकता है, सुरत के कानों से सुना जा सकता है। इसलिए लाओत्से कहते हैं कि शब्दों से बाहर निकलो, बुद्धि के तर्कवाद को तिलांजली दो। केवल देखो और सुनो। ओशो कहते हैं कि सुन्दरता चाहे अन्दर की है चाहे बाहर की है, आनंद चाहे बाहर का है चाहे अन्दर का, यदि उसके अन्दर विचार का

तनिक भी समापन हो गया तो उस सुन्दरता और आनंद की अनुभूति न की जा सकेगी। विचार उसकी सुंदरता को नष्ट कर देगा। इसलिये देखो और केवल देखो, बीच में विचारों को मत आने दो। बुद्धि की कांट छांट उस आनन्द को परिभाषा दे देगी जो उस अनुभव का विकत रूप होगी। यही जीसस भी कह रहे हैं कि तुम्हें मेरे होने (being) का अनुभव प्राप्त नहीं हो सकता है, बल्कि मेरा बनना (becoming) जो उस होने से पैदा हुआ है, अधिक महत्व रखता है।

And he took him, he withdrew,
he spoke three words to him.

जीसस ने तीनों में से थामस को चुना, उसे एक तरफ लेकर गए और उन्होंने उसे तीन शब्द कहे। थामस क्यों चुना गया? पीटर और मैथ्यू को क्यों नहीं चुना? जो शब्द वे कहना चाहते थे शायद वे इतने सख्त और अप्रिय थे कि उन्हें सुनने की क्षमता केवल थामस में हो सकती थी क्योंकि उसका सांचा सबसे लचीला था, फलेक्सीबल था। उसे जीसस हर रूप में स्वीकार्य था जबकि पीटर और मैथ्यू को एक विशेष गुण युक्त जीसस ही स्वीकार्य हो सकता था। उसे जीसस के बीइंग या होने की कोई झलक मिल गई थी इसलिये उसके लिए उनके बीकमिंग (बनना) का विशेष महत्व नहीं रह गया था। उसके मन में अपने सतगुरू का लचीला रूप स्थिर हो गया था। इससे यह भी स्पष्ट है कि तीनों में से जीसस को थामस अधिक प्रिय था और जो व्यक्ति दिल के अधिक निकट होता है उसे ही सख्त बात कही जा सकती है । जो सबसे लचीला होता है, नर्म होता है उसे ही परीक्षा की कसौटी पर अधिक कसा जाता है। जो व्यक्ति सख्त होते हैं, जो झुक नहीं सकते वे अहंकारी होते हैं। ऐसे व्यक्ति केवल प्यार और बड़ाई ही सहन कर सकते हैं। यदि सद्गुरू क्रोध कर देता है या कोई अप्रिय शब्द कह देता है तो वे भाग खड़े होते हैं, नाराज हो जाते हैं। इसलिए सद्गुरू ऐसे व्यक्तियों को अधिक समय देता है ताकि उनके अंदर भी

लचीलापन पैदा किया जा सके। लेकिन जब एक बार वे ग्राह्य हो जाते हैं, रिसेपटिव हो जाते हैं फिर सद्गुरू उन्हें अन्दर की खुराक देने लगते हैं, अन्तर का प्यार देने लगते हैं, अब उन्हें बाहरी प्यार के लिए तरसना पड़ता है। मन की खुराक बंद हो जाती है, आत्मिक खुराक शुरू हो जाती है।

And he took him, he withdrew,
he spoke three words to him.

जीसस ने थामस को तीन शब्द कहे। वे शब्द कौन से थे, वे तो मुझे नहीं पता लेकिन मेरे सद्गुरू ने मुझे जो तीन शब्द कहे थे वे आपको बता देता हूं। उन तीन शब्दों ने मेरे अन्दर वो हालत पैदा कर दी थी जिसका वर्णन आज मैं नहीं कर सकता हूं। वह क्षण मेरे जीवन का सबसे भावुक क्षण था जिसने मेरी चेतना को अंधकार की किसी ऐसी भंयकर खाई में डुबो दिया था कि जहां से निकलना मेरे लिए असम्भव था। मेरा शरीर कांपने लगा था, सामने अंधेरा ही अंधेरा नजर आ रहा था। सद्गुरू की दया और आर्शीवाद से अन्तर का प्रकाश खुल चुका था लेकिन वे शब्द सुनने के बाद मुझे एक सुनसान और भयानक अंधकार की पदचाप सुनाई दे रही थी जो सहज ही बलपूर्वक मेरे शरीर और मन की चेतना पर चढ़ता जा रहा था। शायद वह पल मेरे जीवन का सबसे कठिन पल था जब मुझे लग रहा था कि मेरा सब कुछ लुट गया है। अब जीने का कोई अर्थ नहीं रह गया है।

हम जब पहली बार सद्गुरू के चरणों में गए तो वहां जाते ही कठिन परीक्षा से गुजरना पड़ा। उन्होंने पूछा कि कहां से आए हो? मैंने गांव का नाम बताया तो कहने लगे कि वहां के आदमी अच्छे नहीं होते हैं। औरतों के बारे में भी अच्छे शब्द प्रयोग नहीं किए। जब हम वहां गए तो हम तीन थे। मैं, मेरा बड़ा भाई धर्मपाल और मेरी पत्नि बिमल। मैं छोटी-२ दाढ़ी रखता था, भाई धर्मपाल की पूरी दाढ़ी थी क्योंकि वह 11 साल पहले से ही आध्यात्मिक रास्ते पर था। जब महाराज जी ने ये बातें कही तो मन

तरह-२ की शंकाएं करने लगा। सोचने लगे कि कहीं दूसरी जगह से नाम ले लेते तो अच्छा रहता।

जब उसी दिन अगली बार दर्शन हुए तो हमसे पूछा कि किस मकसद से यहां आए हो? हमने बताया कि परमात्मा की खोज करना चाहते हैं। उन्होंने इस पर छोटा सा व्याख्यान दिया। उस व्याख्यान में विशेष बात यह रही कि पिछली मुलाकात से जो प्रश्न उत्पन्न हुए थे उन सभी का जवाब दे दिया। मन में उनके प्रति आकर्षण पैदा हुआ। ऐसा लगा जैसे हमें भीतर ही भीतर अपनी तरफ खींच रहे हैं। लेकिन जाते-२ एक बार फिर अन्तर में हलचल पैदा कर गए। कहने लगे कि ये जो दाढ़ी रखते हैं ये गुण्डे, बदमाश होते हैं। इस पर दिल्ली की एक छोटी सी कहानी भी सुनाई। यह सुनकर मैं बेचैन हो उठा। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए। यह बातें उन्होंने जितने सत्संगी आए हुए थे उनके सामने कही थी। मैं शुरू से ही अहंकार प्रवति का था। ऐसी बातें सुनना मेरे लिए कितना कठिन रहा होगा इसका अन्दाजा लगाया जा सकता है। लेकिन अन्तर में एक खोज की तड़फ भी पैदा हो चुकी थी। वही तड़फ हमें वहां तक खींच कर ले आयी थी जिसकी पूर्ति केवल वहीं हो सकती थी क्योंकि जितनी गहरी तड़फ होती है, उतने ही ऊंचे, रिच स्रोत से मिलन होता है। प्रकति के प्रबंध में यह बात खुद-ब-खुद ही घटित होती रहती है। जैसी मांग है वैसी ही पूर्ति अवश्य आती है।

सद्गुरू के इस व्यवहार से हम तीनों आश्रम में अलग-थलग पड़ गए थे। हम दो दिन पहले आश्रम में चले गए थे। आश्रम में रहने वाले लोग हमसे बात नहीं करते थे। अगले दिन एक बुजुर्ग जो दिनोद गांव का ही था और आश्रम में आता जाता था, उसने हमसे कहा-थारी चाल तो देसी है और हाल अंग्रेजी है। तुमने ये सफेद कपड़े क्यों डाल रखे हैं। भक्ति जवानी में नहीं की जाती। यह तो बुढ़ापे में की जाती है। तुम्हारा ये हिसाब हमें समझ में नहीं आया। हम कुछ भी जवाब न दे सके क्योंकि

हम वहां का माहौल देख-देख कर हैरान हो रहे थे। हमने आश्रम के अन्दर ऐसे व्यवहार की कभी भी कल्पना नहीं की थी। लेकिन यह सद्गुरू का हमारे साथ एक खेल था।

इस सबके बीच वहां पर एक व्यक्ति ऐसा था जिसने हमें उस कठिन परिस्थिति में सहारा दिया। वह हमें हौंसला देता जा रहा था कि मुझे महाराज जी ने कहा है कि इन्हें यहां कोई भी कष्ट नहीं होना चाहिए। ये मेरे हंस हैं। वह कहने लगा कि जब तुम तीनों आश्रम की तरफ आ रहे थे तो उन्होंने मुझे बुलाया और झरोखे में से दिखाते हुए कहने लगे कि ये जो दो आदमी और एक सफेद कपड़ों वाली औरत आ रही है, इनका ख्याल रखना, इन्हें यहां कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिए।

इसके बाद हमें ओर भी कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ा। शाम के वक्त महाराज जी के सबसे निकट रहने वाले एक व्यक्ति आए और हम तीनों को सबके सामने काफी फटकार लगाई। हम घबरा गए लेकिन कुछ कह न पा रहे थे। केवल देखते जा रहे थे और अन्तर में विचारों का मंथन चल रहा था।

मैं उस पढ़े लिखे व्यक्ति के दुर्व्यवहार को सहन नहीं कर पाया। आखिर मेरे सब्र का बांध टूट ही गया। हमारी सहायता करने वाला वह आदमी जब हामरे पास आया तो मैं उससे कहने लगा कि यह जो व्यक्ति है इसके अंदर तो इंसानियत ही नहीं है, यह आदमियों को पशुओं की तरह हांकता है। एक ओर तो दया और प्रेम के सिंधु महाराज जी हैं जिनको किसी का भी थोड़ा सा दुःख सुनकर आंसु आने लग जाते हैं और दूसरी तरफ ये लोग हैं जो इस तरह व्यवहार करते हैं। लेकिन बाद में उस व्यक्ति ने जब तक हम वहां रहे हमारी बहुत मदद की। हमें बहुत प्यार दिया। सतसंग के कार्य को फैलाने में, सतसंग के कार्यो में सद्गुरू की सहायता करने में उस व्यक्ति ने अथक मेहनत की । उसकी मेहनत को विधि ने स्वीकार किया और उसे हजारों गुणा बढ़ाकर उसका फल भी प्रदान किया,

मेरे विचार से जिसका वह हकदार भी था।

महाराज जी एक कुम्हार की तरह ऊपर से थपकी मार रहे थे लेकिन अन्तर में एक रूहानी कसीस पैदा करते जा रहे थे। जो भी संशय उठते उन्हीं का जवाब दे जाते और कोई न कोई नया संशय खड़ा कर जाते। लेकिन उस दो दिन के अन्तराल में उनके प्रेम ने हमें पूरी तरह जकड़ लिया था। उसके बाद जब रात को बड़ा सत्संग हुआ, वह कार्तिक मास की पूर्णमासी को होने वाला वार्षिक सत्संग था, उसमें भरे पाण्डाल में कहने लगे कि यह सत्संग मैं तीन जीवों के लिए कर रहा हूं। यहां पर दो मां जाए भाई आए हुए हैं और उनके साथ एक बहन मीरा बनकर आई हुई है, यदि वह इसी लिबास में पार हो गई तो उसकी एक सौ एक पीढ़ियां पार हो जाएंगी।

फिर सुबह कहने लगे कि मेरे दिल में तुम्हारे लिए जगह बन गई है। अब मेरी इज्जत तुम्हारे हाथ में है। हमारे लिए इससे ऊंची बात क्या हो सकती थी। इसके बाद हमने उनसे हमेशा एक ही प्रार्थना की कि हे सद्गुरू! हे सच्चे बादशाह! हमें नहीं पता है कि इस बात का क्या अर्थ है लेकिन हम आपसे केवल एक ही चीज मांगते हैं कि अपनी इज्जत की रक्षा करना। इसके सिवाय हमने उनसे कभी कोई मांग नहीं की। न सुख की, न धन-दौलत की और ना ही मुक्ति की। हर समय केवल एक ही पुकार रहती थी और उन्होंने भी हमें एक गुरू और पिता की तरह हमेशा भरपूर प्यार और आशीर्वाद दिया जिसे हम आजीवन नहीं भूल सकते हैं।

रूहानी दौलत मिलना इतना आसान खेल नहीं है। इसमें अहंकार का मर्दन करना पड़ता है। जब अहंकार का मर्दन होता है तभी अस्तित्व अन्दर आने के लिए दरवाजा खोलता है। अपने संदेश में भागीदार बनाता है। कई बार ऐसे व्यक्ति आते हैं जिन्हें यदि थोड़ी सी कठोर बात कह दी जाए तो भाग खड़े होते हैं, विरोध करने लगते हैं। यह मार्ग ऐसे व्यक्तियों के लिए नहीं है। वे खाली आते हैं और खाली ही चले जाते हैं।

वे तीन शब्द कौन से हैं जो सद्गुरू ने हमें कहे थे? दीक्षा देने के लगभग तीन महीने बाद मैं अकेला सद्गुरू के पास गया था। इससे पहली बार जब हम उनके दर्शन करने के लिए गए तो उन्होंने मेरी आंखें देखकर कहा कि तू प्रकाश में रहता है इसलिए तेरा नाम प्रकाशानंद है। उसके बाद वे हम दोनों को बिमल प्रकाश कहने लगे। संगत भी इसी नाम से पुकारने लगी। नाम लेते ही हम दोनों के अंतर के दर्शन खुल चुके थे और हम ध्यान में मस्त रहते थे। हर रोज सात-आठ घंटे का ध्यान कर लेते थे। जीवन में एक नई बहार सी आ गई थी। अब सद्गुरू हमारे लिए एक मनुष्य नहीं थे बल्कि अब हम उन्हें खुदा समझने लगे थे। उनसे अलग हमारे लिए कोई परमात्मा या देवी-देवता नहीं रह गया था। हमारे लिए यदि दुनियां की सबसे प्यारी चीज थी तो वह थी हमारे सद्गुरू। हम हर कीमत पर उनके हुक्म का पालन करना चाहते थे।

ऐसे समय में मैं उनके पास गया और मिलने के लिए दो मिनट का समय मांगा तो कहने लगे - मैं तुझसे नहीं मिलना चाहता हूं। 'तुम चोर हो' - यह वे तीन शब्द थे जो उन्होंने मुझसे कहे थे और जो सुनते ही मेरे हृदय को चीर गए क्योंकि अब जब हम ऐसी हालत में पहुंच चुके थे उसमें हम सद्गुरू की नाराजगी सहन नहीं कर सकते थे। मैं अन्दर तक हिल गया और वहीं पर सहमा सा खड़ा रहा। वे दूसरे लोगों से बातें करते रहे लेकिन मुझसे कोई बात नहीं की। न ही मेरी हिम्मत हुई कि उनसे बात कर सकूं। मेरी हालत सांप के मूंह में छुछंदर वाली हो गई थी। मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा था कि अब मैं क्या करूं। ऐसा लगा जैसे हमारा सब कुछ लुट गया है। हमारा लक्ष्य हमसे छीन लिया गया है।

मैं दूर खड़ा-खड़ा दीन निगाहों से उन्हें देखता रहा। जब वे अन्दर जाने लगे तो दरवाजा बंद करते समय उन्होंने एक नजर मुझ पर डाली। वे जानी-जान थे, मेरी स्थिति को भांप गए और उन्होंने मुझे बुलाया। मैं उनके निकट जाते ही जोर-जोर से रोने लगा और उनसे पूछने

लगा कि हमसे क्या गल्ती हो गई है? उन्होंने मेरे मुंह पर प्यार से दो चपेट लगाई और अपनी छाती से लगा लिया। कहने लगे कि तू समझा नहीं। चोर वह होता है जो दिन में काम करता है और रातों को राम-नाम की चोरी करता है। वही असली चोर है। दुनिया उसकी चोरी को पकड़ नहीं पाती है। मेरे सद्गुरू मुझे पागल कहते थे। पागल का मतलब है गल पा लेना। यह सुनकर मेरी जान में जान आई। मेरा चेहरा खिल उठा। वहीं पर खड़े लोगों को बुलाया और कहने लगे कि देखो इस पढ़े लिखे मूर्ख को, यह चोर का मतलब नहीं समझता है। यदि बताया नहीं जाता तो इसे मर्ज लग जाती। मेरी वास्तविक स्थिति यही थी।

जब इष्ट नाराज हो जाता है तो भक्त की दुनियां ही उजड़ जाती है। ऐसा ही कुछ मेरे साथ भी हुआ लेकिन उसके बाद उन्होंने मुझे बहुत प्यार दिया। तरह-तरह का प्रसाद दिया। मेरी खुशी का कोई ठिकाना न रहा। ध्यान-भजन भी इतना बनने लगा जिसके हम बिल्कुल योग्य नहीं थे। सद्गुरू की दया को देखकर हमारा हृदय ओर भी दीनता में डूबता चला गया। उसके बाद हमारी आश्रम में किसी के साथ बात करने की कभी हिम्मत नहीं हुई। हम चुपचाप जाते थे, उनके दर्शन करते और वापिस चले आते। मन में कोई प्रश्न या संशय बाकी नहीं रह गया था। ध्यान-भजन की उन्नति को पत्रों के द्वारा हम उनके पास लिखते रहते थे। पत्र लिखने के लिए आरम्भ में उन्होंने हमें स्वयं ही कहा था।

आगे क्या कहा गया है -

Now when Thomas came to his companions,
they asked him:
What did Jesus say to thee?

जब थामस अपने साथियों में वापिस आया तो वे उससे पूछने लगे कि जीसस ने उसे क्या कहा है? उसने अपने साथियों को कहा-

Thomas said to them:

If I tell you one of the words he said to me,
You will take up stones and throw at me;
and fire will come from the stones and burn you up.

थामस ने कहा कि जो शब्द मुझे जीसस ने कहे हैं यदि मैं उनमें से एक शब्द भी कहूंगा तो तुम पत्थर उठाओगे और मुझे मारने लगोगे। जब व्यक्ति के अहंकार पर चोट लगती है तो वह घायल हो जाता है और उस घायल अवस्था में वह उलटकर प्रहार करने का प्रयत्न करता है। जितना बड़ा अहंकार होता है उतनी ही अधिक प्रतिक्रिया होती है। व्यक्ति जितना अधिक संसारी होता है उसका अहंकार उतना ही बड़ा होता है। संसार के प्रति उसका मोह और लगाव अत्यधिक होता है। वह किसी भी कीमत पर उसे छोड़ने के लिये तैयार नहीं होता है। यदि कोई उसे समझाने का प्रयत्न करता है तो वह उस पर प्रतिक्रिया करता है क्योंकि उसने अपना सारा व्यापार संसार की बाहरी परिधि पर स्थापित कर लिया है जहां का नियम भाग-दौड़ और आपाधापी है, एक दूसरे से आगे निकलने की लालसा है।

आध्यात्मिक व्यक्ति ने भी अपना व्यापार स्थापित कर लिया है। किसी को जप का अहंकार है तो कोई तप में स्वयं की अभिव्यक्ति पा रहा है। कोई त्याग को अहंकार का पान करवा रहा है तो कोई आदर्श और ज्ञान को अपनी रोजी रोटी का साधन बना रहा है। उसे यदि कुछ कहा जाए तो वह आक्रामक हो जाता है। अपने शिष्यों के ऊपर अपना पूर्ण अधिकार समझता है। उन्हें किसी दूसरी जगह जाने से या सत्संग सुनने से वर्जित करता है।

नास्तिक और आध्यात्मिक व्यक्ति को उसकी गल्ती का अहसास करवाना अति कठिन कार्य है। कोई विरला ही इससे बच पाता है। ऋषि दुर्वासा जैसे अनेक ऋषि ऐसे हुए हैं जिन्हें यदि कुछ ऐसा कह दिया जाता था जो उन्हें रूचिकर नहीं लगता था तो वे तुरन्त क्रोधित हो जाते थे और श्राप दे देते थे। इसलिए थामस अपने साथियों को शायद ठीक ही कह रहे

हैं कि यदि तुम्हें सच्चाई का एक अंश भी बताया जाएगा तो तुम मुझे पत्थर उठाकर मारने लगोगे।

You will take up stones and throw at me;
and fire will come from the stones and burn you up.

थामस कहते हैं कि उन पत्थरों से ऐसी अग्नि निकलेगी जो तुम्हें जलाकर राख कर देगी। पुराने जमाने में कहते हैं कि ऋषि श्राप दे दिया करते थे। श्राम क्या है? आर्शीवाद क्या है? जब आप किसी को अपने कार्य से खुश कर देते हैं, किसी को अच्छा खाना खिला देते हैं या मदद कर देते हैं तो उसकी आत्मा प्रसन्न हो जाती है और वह आपको दुआएं देने लग जाता है। यही आर्शीवाद है। उसके अंदर आपके प्रति प्रेम पैदा हो जाता है और वह मन, कर्म और वाणी से आपकी भलाई चाहने लगता है। जब आपको कोई चोट मारता है या हानि पहुंचाता है तो आप ही उस चोट से घायल नहीं होते हैं बल्कि वह भी उससे प्रभावित होता है। कभी-२ तो वह आपसे भी अधिक आहत होता है। यदि वह कोई ऊंची वति का महात्मा है तो वह आपका संदेश ब्रह्माण्ड के ऊंचे मण्डलों तक भेजता है क्योंकि उसके मन की पहुंच बहुत दूर तक होती है। उसके अन्दर एक चुम्बकीय शक्ति विराजमान होती है जो दूर-२ तक आपके संदेश को फैलाती है और ऊंचे स्तर की दैविक सत्ता आपकी सहायता के लिये उतर आती है। फिर कोई भी आपकी हानि नहीं कर सकता है।

किसी के अंदर यदि हमने प्रेम का बीज बो दिया है और वह हमारी तरफ आकर्षित हो गया है और उस आकर्षण में यदि कोई आध्यात्मिक प्रेम या निस्वार्थ प्रेम शामिल है तो यह हमारी वास्तविक जीत है। इसका अर्थ यह है कि अब हम अकेले नहीं रह गए हैं बल्कि ओर भी कोई है जो सूक्ष्म रूप से हमारे उद्देश्य की प्राप्ति में हमारी मदद कर रहा है। यदि निस्वार्थ प्रेम का ऐसा बीज कुछ व्यक्तियों के अन्दर सामुहिक तौर पर पैदा हो जाता है तो उस प्रेम से उठने वाली धार समूचे संसार को बदल सकती है। यह है आर्शीवाद और उसका प्रभाव।

इसके विपरीत यदि हमने किसी की आत्मा को अपने मन, वचन या कर्म से दुःख पहुंचाया है तो उस व्यक्ति से अग्नि की एक ज्वाला निकलने लगती है। वह सोते-जागते उस अग्नि की चिंगारी को अपने ख्याल की ताकत से जलाता रहता है और नफरत की रेडिएशन हमारी तरफ फैंकता रहता है। यह श्राप है। श्राप वाणी से नहीं दिया जाता बल्कि यह तो एक आन्तरिक अवस्था का नाम है। जीसस वाणी से कहते जा रहे हैं कि हे प्रभू! ये जो लोग मेरे अन्दर कीलें ठोक रहे हैं ये नहीं जानते हैं कि ये कितना बड़ा अपराध कर रहे हैं, ये अनजान हैं इन्हें माफ कर देना। लेकिन क्या वे लोग माफ किए जा सके। उनका भीतर उस दुःख की कराहट से अग्नि फैंक रहा था। जितना अधिक दुःख दिया जा रहा है उतना ही बड़ा श्राप है। दुःख में व्यक्ति अन्दर से बंधता चला जाता है, वह कराहने लगता है। उसकी पूर्ण ताकत इकट्ठी होकर उसका प्रतिरोध करने लगती है। पूर्ण ताकत इकट्ठा होने का अर्थ है पूर्ण समाधि (Complete integration of Energy)। ऐसी अवस्था में जो भावना फैंकी गई है वह अत्यंत घातक होती है।

इसलिये अध्यात्म में कहा जाता है कि किसी के दिल को कष्ट मत पहुंचाओ, उसकी आत्मा रो देगी तो तुम्हारा विनाश हो जाएगा। मेरे सद्गुरू कहते हैं -

मंदिर तोड़ो मस्जिद फोड़ो ये तो यार मुजाका है।
पर दिल किसी का मत तोड़ो यही घर खास खुदा का है।।

शायद इसीलिए कहा गया है कि परमात्मा मनुष्य के दिल के अंदर रहता है। लेकिन धर्म और मजहब के नाम पर हजारों-लाखों दिलों को तोड़ा जा रहा है। उनकी बेरहमी के साथ चित्ता जलाई जा रही है। हम नहीं जानते हैं कि हम किस खुदा का आह्वान कर रहे हैं, किस खुदा को

खुश कर रहे हैं । मनुष्य के विकास की कहानी कुछ वर्षो की कहानी नहीं है। बल्कि हजारों, लाखों वर्षो की कहानी है। इसलिए जो बीज आज बोया गया है, उसका प्रभाव सम्पूर्ण भविष्य पर पड़ सकता हे। इसलिए हमें देखना है कि कहीं हम अपनी सारी कौम और जाति के लिए विनाश का रास्ता तो नहीं खोल रहे हैं? उसके कफन में कील ठोकने का कार्य तो नहीं कर रहे हैं?

एक भूल की थी चंद यहुदियों ने जिस भूल ने संसार का इतिहास बदल डाला। जीसस कह रहे हैं कि मेरे प्रभू! इन नासमझ लोगों को माफ कर देना। लेकिन क्या वे लोग कुदरत द्वारा माफ किए जा सके? मेरे सद्गुरू कहते थे -

राम कहे मेरे संत को दुःख मत दीजे कोए,
संत दुखाए मैं दुखी मेरे आपे भी दुःख होए।
हिरणाकुश, रावण औदारियां मैं ही मारा कंश,
जो मेरे संत को आन सतावे उसका खोऊ वंश।

कुछ व्यक्तियों ने मिलकर एक व्यक्ति की निर्ममता और निर्दयता से हत्या की। इसका परिणाम यहुदियों की सारी कौम आज तक भुगत रही है और जब तक मानवता रहेगी उन्हें माफ नहीं किया जा सकेगा। इसके दो कारण हैं। एक तो जीसस को सूली चढ़ाने का तरीका, जिसके दुःख ने जीसस की अन्तरम चेतना को हिला कर रख दिया। सम्पूर्ण चेतना क्रियान्वित हो उठी। आत्मा की सारी ताकत, पोटेंशियलिटी व्यक्त हो उठी। जीसस जैसे व्यक्ति की आत्मा की पूर्ण ताकत का कार्यान्वित होने का अर्थ है सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की आत्मा में उस कार्य की मौजूदगी का दर्ज होना अर्थात् सम्पूर्ण संसार के लिए वह कार्य संस्कार बनकर दर्ज हो जाना। केवल दुःख ही ऐसा साधन है जिसमें हमारे मन और शरीर की सारी चेतना प्रभावित होती है, हिल जाती है। उद्वेलित हो उठती है। सुख में ऐसा संभव नहीं है। इसलिए सद्गुरू ताराचन्द जी महाराज कहते थे कि दुःख हमारा

परम मित्र है। जब भी कुछ मिलता है वह दुःख में ही मिलता है। सुख हमें परमात्मा से दूर ले जाता है। कबीर साहब कहते हैं -

सुख के माथे सिल पड़ो नाम हिये से जाए।
बलिहारी वा दुःख जो पल-पल नाम रटाय।।

दुःख पल-पल परमात्मा की याद दिलाता है। जीसस कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे। उनके अन्दर आध्यात्मिक सूर्य अवतरित हो चुका था। ओशो कहते हैं कि यहूदी सूर्य के साथ खेल रहे थे खिलौना जानकर। वह भी ऐसा सूर्य जो समय के पार है। जो सूर्य आकाश में चमक रहा है संभव है उसका इंधन खत्म हो जाए, जिसकी चमक कालान्तर में धुमिल पड़ जाए लेकिन आध्यात्मिक सूर्य समय के पार है, उसकी चमक बढ़ती है घटती नहीं। ऐसे सूर्य के साथ खेलने का अर्थ है जब तक यह सष्टि रहेगी, वह संस्कार बार-बार कार्य बनकर प्रकट होता रहेगा। कार्य-कारण का यह खेल चलता रहेगा। कार्य किया गया है तो उसका संस्कार भी हमारे मन की चेतना पर छप जाता है और जब तक संस्कार मौजूद रहता है तब तक वह कार्य बार-२ पुनरावर्त होता है। स्वतः ही घटित होता जाता है।

एक जीसस के बदले लाखों यहुदी अपनी जान की बलि दे चुके हैं। अकेले हिटलर ने 50-60 लाख यहुदियों को जला-जला कर मार डाला। उन्हें गैस के चैम्बर में डाल दिया गया। चुन-चुन कर यहुदियों को मारा गया। उन्हें मारने के लिए उन्हीं के ऊपर मौत के नए-नए तरीकों की खोज की गई जिन्हें सुनकर आज भी हमारा दिल दहल जाता है। आज यहुदी कहते हैं कि इसमें हमारा क्या दोष है? यह कार्य हमारे पूर्वजों ने किया है वह भी हजारों साल पहले। इसकी सजा हमें क्यों और इतने वर्ष बाद क्यों? एक ही भूल और उसकी सजा इतनी भंयकर और दीर्घकालीन।

ऐसा इसलिए है कि जीसस समय के पार थे। जब तक समय है तब तक जीसस भी है। दूसरा कारण यह है कि जीसस का जो स्वरूप पूजा के लिए लिया गया है वह सूली पर लटकता हुआ है। यह रूप भक्त के दिल को घायल करता है और जब तक भक्त घायल होता है तब तक भक्त के दिल से अनजाने ही उस व्यवस्था के लिए श्राप निकलता रहेगा जिस व्यवस्था से उनको सूली पर लटकाने वाले लोग जुड़े हुए थे। उस व्यवस्था से यहुदी जुड़े हुए थे और ईसाइयों के लिए वह आज भी जुड़े हुए हैं। ऐसा नहीं है कि वह स्वरूप केवल यहुदियों को हानि पहुंचा रहा है बल्कि यह ईसाइयों के दिल में भी एक धारणा, एक ख्याल और उस ख्याल से जुड़ी नफरत पैदा करता है। जब तक दिलों में किसी मनुष्य या कौम के लिए यह नफरत मौजूद रहेगी तब तक ईसाईयत भी आत्मा की मुक्ति कैसे प्राप्त कर सकती है और जब तक ईसाईयत की आत्मा घायल है तब तक जीसस उससे मुक्त कैसे हो सकते हैं। वह आज भी सूली पर झूल रहे हैं। इस दर्द को वह तब तक सहन करते रहेंगे जब तक कोई भी ईसाई का दिल घायल हो रहा है या एक भी यहुदी दिलों से उठने वाली उस नफरत की अग्नि की आंच से झुलस रहा है।

अतः जीसस के सूली पर लटके हुए स्वरूप की पूजा जब तक पूजाघरों में होती रहेगी तब तक न तो ईसाईयत ही मुक्ति प्राप्त कर सकती है और न ही यहुदी उसके प्रभाव से बच सकेंगे। बल्कि इससे सम्पूर्ण मानवता और समूचा संसार भी प्रभावित होता रहेगा। सम्पूर्ण मानवता के अमन और आत्मा की शांति के लिए ईसाइयों को जीसस का रूप बदलना होगा। दया सागर का रूप स्थापित करना होगा जिसे दिखते ही मन में प्रेम और शांति उत्पन्न हो। भक्ति का संचार हो।

मसीहा से मिलन

Jesus said:

Take no thought from the morning until the evening
and from the evening until the morning,
for what you shall put on.

His disciples said:

When wilt thou be revealed to us
and when will we see thee?

Jesus said:

When you take off your clothing without being ashamed
and take your clothes and put them under your feet
as the little children and tread on them-
then shall you behold the Son of the Living one,
and you shall not fear.

मसीह ने कहा:

कोई भी विचार मत धारो सबुहो से शाम तक
कुछ भी न विचारो शाम से फिर सुबहो तक,
जो भी करो जीवन कर्म, उसमें धारो यही धर्म।

शिष्यों ने मसीह से पूछा:

आपकी इक झलक कब नसीब होगी हमें
दर्श प्यास में जान अटकी कब मिलोगे हमें?

मसीह ने कहाः

सुनो ए खुदापरस्त रूहो,
झूठा मुखौटा तुम लादे हुए,
लबादा जब यह उतरेगा बेहिचक,
पैरों तले जब रौंदोगे इसे,
बच्चा जैसे उतार फैंकता है अपनी पोशाक
पैरों तले रौंदकर शकून मिलता उसे -
फिर तुम पा सकोगे दर्शन,
जिन्दा रूप में खुदा होगा तुमसे प्रसन्न,
भय से निजात सदा पाओगे तुम,
मरने के खौंफ से मुक्त हो जाओगे तुम।

ईसा मसीह अपने शिष्यों से बात कर रहे हैं। वह उन्हें बता रहे हैं कि स्वर्ग का साम्राज्य एक जीवित अस्तित्व (Living One) है और उसे कैसे प्राप्त किया जाए? जीसस कहते हैं -

Take no thought from the morning until the evening and from the evening until the morning.

वे कहते हैं कि सुबह से शाम तक और फिर शाम से सुबह तक कोई भी विचार मत धारो। जीसस सद्गुरू दर्शन को विचार के साथ जोड़ रहे हैं। विचारों के बहाव को परमात्मा तक पहुंचने के मार्ग में रूकावट बता रहे हैं। वे परमात्मा के दर्शन को विचार-बुद्धि से आरम्भ कर रहे हैं। पंतजली ऋषि जो जीसस से पहले आए उन्होंने कहा - **चित्तवति निरोधः।** चित्त पर उठने वाली सब वतियों का निरोध करो। उन्होंने भी यही कहा कि जब तक मन व बुद्धि के अन्दर उठने वाली हर हलचल को स्थिर नहीं किया जाएगा तब तक आत्मिक प्रज्ञा में स्थिति नहीं हो सकती ।

भारतीय मनीषियों ने इस ओर बहुत अधिक अनुसंधान किया।

वैदिक और उपनिषद ऋषियों ने मन की गति को पकड़ने के लिए बहुत अधिक प्रयोग किए। खान-पान, आचार-संहिता और आचार-व्यवहार पर अत्यधिक बल दिया। मनुष्य का संबंध स्वयं या समाज से ही नहीं है बल्कि बाहरी प्रकति जिसके अन्दर वह दिन-रात रहता है के साथ भी वह घनिष्ठ रूप से बंधा हुआ है और जाने-अनजाने वह उस प्रकति के साथ लगातार व्यवहार कर रहा है। इसलिए ऋषियों ने उन सभी परिस्थितियों का परित्याग किया जिनके कारण उसके चित्त पर कोई भी हलचल उठे और आत्मिक शांति में रूकावट आए।

उन्होंने देखा कि इन्द्रियों के भोग आत्मिक ज्ञान के मार्ग में बाधा डालते हैं। सभी इन्द्रियों और मन को जो शक्ति की धार ताकत देती है वह प्राण है इसलिए उन्होंने प्राण वायु को साधने का मार्ग अपनाया और प्राण वायु को साधने के लिए प्राणायाम को आधार बनाया। बाहर का वायु जो समस्त आकाश में व्याप्त है, हमारे शरीर मे प्राण उसी का प्रतिनिधि है। वायु देवता की सिद्धि करने के लिए भी प्राणायाम को उचित माना गया है। शरीर की समस्त शक्तियों में प्राण को ही उत्तम व श्रेष्ठ माना गया है। इसकी सिद्धि उपनिषदों में अनेक स्थानों पर की गई है।

सामदेव के उपनिषद छांदोग्य उपनिषद के पंचम अध्याय के प्रथम खण्ड में कहा गया है कि एक बार प्राण और दूसरी इन्द्रियों जैसे वाणी, कान, आंख, मन में श्रेष्ठता को लेकर विवाद हो गया जिसे सुलझाने के लिए वे प्रजापति ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्माजी ने कहा कि तुम पांचों में से जिसके भी शरीर त्याग देने से शरीर मत हो जाए तो समझना कि वही श्रेष्ठ है। सबसे पहले वाणी ने शरीर का त्याग किया और एक वर्ष बाद पुनः शरीर में प्रवेश किया तथा पूछा कि मेरे बिना तुम कैसे जीवित रहे तो उन सभी ने एक स्वर में कहा कि जिस प्रकार गूंगे लोग बिना बोले अपने सभी कार्य करते हुए जीवित रहते हैं उसी प्रकार हम भी जीवित रहे।

इसके बाद चक्षु इन्द्रिय ने एक वर्ष के लिए शरीर का त्याग कर

दिया और एक वर्ष के बाद आकर पूछा कि आप सब मेरे बिना कैसे जीवित रहे? दूसरी इन्द्रियों ने कहा कि जिस प्रकार अंधा व्यक्ति बिना देखे अपना जीवन यापन कर लेता है उसी प्रकार हम भी जीवित रहे। फिर श्रोत्र इन्द्रिय ने शरीर त्याग किया और एक वर्ष बाहर रहने के बाद पुनः शरीर में आकर यही प्रश्न किया। अन्य इन्द्रियों ने कहा कि जिस प्रकार बहरा व्यक्ति जीवित रहने में सक्षम है हम भी उसी प्रकार जीवित रहे। अब मन ने भी शरीर छोड़ दिया और एक वर्ष के पश्चात वापिस आकर अन्य इन्द्रियों से वही प्रश्न किया कि मेरी अनुपस्थिति में तुम सब कैसे जीवित रहे। उन्होंने कहा कि जैसे बच्चा जिसका मन विकसित नहीं होता, परन्तु सभी क्रियाएं सुचारू रूप से करता है और जीवित रहता है, उसी प्रकार हम भी जीवित रहे। अंत में प्राण ने शरीर छोड़ने का संकल्प किया। जैसे ही उसने शरीर छोड़ना आरम्भ किया, उसके साथ ही दूसरी इन्द्रियों की शक्ति भी कमजोर होने लगी और प्राण से प्रार्थना करने लगी कि हमें छोड़कर मत जाओ। हमारा जीवन तुम पर ही आश्रित है। अतः आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं। इस प्रकार प्राण की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध हो गई।

इसी उपनिषद के प्रथम अध्याय के द्वितीय खण्ड में देवता और असुरों के माध्यम से प्राण की श्रेष्ठता को दर्शाया गया है। एक बार प्रजापति की दोनों संताने देवता व असुर आपस में युद्ध कर रहे थे। देवता युद्ध में हारते जा रहे थे। वे प्रजापिता के पास गए तो उन्होंने उन्हें उद्गीत की उपासना करने को कहा। देवताओं ने उद्गीत या ओ३म् की उपासना करने के लिए सबसे पहले घ्राण इन्द्रिय (नाक के माध्यम से) के रूप में घ्राण को ही उद्गीत मानकर उपासना आरम्भ कर दी, परन्तु असुरों ने उसे अपने पाप से दुषित कर दिया। इसके पश्चात नाक सुगंध (देवता) और दुर्गन्ध (असुर) दोनों को ग्रहण करने लगी। फिर देवताओं ने जिह्वा के द्वारा वाणी के अन्दर विद्यमान प्राण को उद्गीत मानकर उसकी उपासना की तो असुरों ने उसे भी दुषित कर दिया। उसके बाद जिह्वा भी सत्य के

साथ-साथ असत्य का उच्चारण करने लगी। इसी प्रकार देवताओं द्वारा नेत्रों की उपासना करने पर असुरों ने उन्हें भी दुषित कर दिया और वे शुभ व अशुभ दोनों प्रकार के दष्य देखने लगे। फिर देवताओं ने कानों के माध्यम से उपासना आरम्भ की तो असुरों ने उन्हें भी दूषित कर दिया और वे मधुर और कटु दोनों प्रकार की बातें सुनने लगे। अब देवताओं ने मन की उपासना की तो उसे भी असुरों ने दुषित कर दिया तथा मन भी अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के निश्चय करने लगा। अंत में देवताओं ने प्राण की उपासना की, लेकिन असुर प्राण की शक्ति को दुषित नहीं कर पाये और उसे दुषित करने के प्रयत्न में वह स्वयं नष्ट हो गये। अतः प्राण ही सर्वश्रेष्ठ है और प्राण किसी भी प्रकार सुगंध, दुर्गन्ध, राग, द्वेष आदि से दुषित नहीं होता है। अंत काल में प्राण ही ब्रह्मरूप आत्मा को लेकर जाता है और सारी इन्द्रियां स्वयं ही मत हो जाती हैं। अनेक प्रसिद्ध ऋषियों जैसे अंगिरा, बहस्पति, बक आदि ने प्राण की उद्गीत के रूप में उपासना की और प्रज्ञा को प्राप्त हुए।

सप्तम अध्याय में ब्रह्मापुत्र सनत्कुमार आदि नारद ऋषि को ब्रह्म का रूप समझाते हुए कहते हैं कि मन नाक व वाणी दोनों से ऊपर है। मन से बढ़कर संकल्प है। संकल्प से बढ़कर चित्त, चित्त से ऊपर ध्यान, ध्यान से श्रेष्ठ विज्ञान, विज्ञान से श्रेष्ठ बल, बल से श्रेष्ठ अन्न है। अन्न से श्रेष्ठ जल, जल से उत्तम तेज, तेज से श्रेष्ठ आकाश, आकाश से श्रेष्ठ स्मरण, स्मरण से बढ़कर आशा और आशा से श्रेष्ठ प्राण को माना गया है, क्योंकि यदि प्राण नहीं है तो जीवन ही नहीं रहेगा। अतः प्राण ही ब्रह्म है।

वहदारण्यक उपनिषद के प्रथम काण्ड प्रथम अध्याय के ततीय ब्राह्मण में छान्दोग्य उपनिषद की तरह ही देवता और असुरों के माध्यम से प्राण की श्रेष्ठता सिद्ध की गई है। प्राण को 'अंगिरस' की संज्ञा दी गई है। प्राण जिस अंग को भी छोड़ देता है, वह सूख जाता है जिस प्रकार पक्षाघात या लकवे में हाथ, पैर या जिह्वा सूख जाती है।

इसी उपनिषद के ततीय काण्ड षष्ठम् अध्याय के प्रथम ब्राह्मण में भी वाक्, श्रोत, चक्षु आदि सभी से प्राण को ही सर्वश्रेष्ठ व सबका आधार स्वीकार किया गया है।

प्रश्नोपनिषद में भी छान्दोग्य उपनिषद व वहदारण्यक उपनिषद की उपमा के माध्यम से शरीर के सभी देवताओं में प्राण को ही श्रेष्ठ कहा गया है और प्राण की स्तुति करने के लिए नौ श्लोकों का विधान भी किया गया है जिनकी स्तुति से प्राण पुष्ट होते हैं और रोगों से शरीर की पुष्टि होती है तथा शरीर स्वस्थ, तेजस्वी व प्राणवान हो जाता है। आश्वलायन ऋषि के प्रश्न का उत्तर देते हुए पिप्लाद ऋषि कहते हैं कि प्राण ब्रह्म से उत्पन्न होता है और जिस प्रकार छाया जीव के अधीन उसका प्रतिरूप होती है उसी प्रकार प्राण ब्रह्म की छाया है। प्राण को ही स्वयं प्रजापति कहा गया है जो गर्भ में विचरकर माता-पिता के अनुरूप संतान के रूप में जन्म लेते हैं। प्राण को ही इन्द्र, रूद्र, विष्णु, वायु, स्मस्त ज्योति के स्वामी सूर्य आदि नामों से पुकारा गया है। प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष तथा लोक और परलोक में जो भी है वह प्राण के ही अधीन है। अतः प्राण से यह प्रार्थना की गई है कि हे प्राण! जिस प्रकार माता अपने पुत्रों की रक्षा करती है, उसी प्रकार आप हमारी रक्षा करें।

कौषीतकी उपनिषद में भी प्राण की महता को विस्तार से वर्णन किया गया है। शरीर के सभी देवताओं में प्राण ही श्रेष्ठ है। प्राण के बिना शरीर एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता है। अतः प्राण ही जीवन है। एक रूपक के माध्यम से प्राण और प्रज्ञा की एकरूपता को दर्शाया गया है - जैसे रथ की नेमि त्रिज्यारूपी अरों पर और त्रिज्यारूपी अरे नेमि पर निर्भर हैं, ऐसे ही भूत प्रज्ञा में और प्रज्ञा प्राण में स्थित है। यह प्राण ही प्रज्ञा, वायु व अमरत्व है। यह प्राण ही उस परब्रह्म का अंश है जो शरीर से कर्म करवाता है और आत्मा रूप में स्थित है।

मुख्य उपनिषदों के अतिरिक्त दूसरे उपनिषदों में भी प्राण की

श्रेष्ठता का बहुलता के साथ वर्णन किया है। उपनिषदों में वेदों के ज्ञानकाण्ड को अधिकता के साथ स्थान दिया गया है। उपनिषद काल उत्तर वैदिक काल (1000-600 ईसा पूर्व) के नाम से भी जाना जाता है। इस काल में अनेकों बार आत्मा, ब्रह्म, जीव आदि के विशुद्ध रूप व परस्पर संबंध के बारे में ऋषि-महात्माओं में ज्ञान की सर्वोच्चता को सिद्ध करने के लिए आपसी चर्चा और शास्त्रार्थ होते रहते थे। उस समय के राजा और सम्राट भी इन चर्चाओं में भाग लेते थे। कई राजाओं को ब्रह्म ज्ञानी होने का गौरव प्राप्त था। जब भी कोई जिज्ञासू ब्रह्म विद्या के बारे में जानना चाहता था तो उसे गुरू के पास जाकर वेद, संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों का पठन-पाठन अवश्य करना पड़ता था। उपनिषद जिसे वेदान्त भी कहा गया है, वेदों की आखरी कड़ी है। विषय की दष्टि से वेद के दो भाग हैं - कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। संहिता, ब्राह्मण और आरण्यकों में मुख्य रूप से कर्मकाण्ड, यज्ञ व अनुष्ठानों का विस्तार से वर्णन होने के कारण ये कर्म प्रधान हैं जबकि उपनिषदों में ब्रह्म और ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग आदि विषयों का विशुद्ध वर्णन है अतः भारतीय साहित्य में उपनिषदों को ज्ञान की दष्टि से विशेष स्थान प्राप्त है।

उपनिषदों में मानव शरीर और सष्टि के सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान को जानने का प्रयास किया गया है। उस ज्ञान को व्यावहारिक रूप में प्राप्त करने के लिए प्राणायाम को आवश्यक माना गया है क्योंकि प्राण को मानव शरीर और सष्टि की समस्त दैवीय शक्तियों में श्रेष्ठ कहा गया है। परमात्मा प्राप्ति का जो भी मार्ग व्यावहारिक अर्थात् अभ्यास पर आधारित मार्ग है वह प्राणायाम पर ही आधारित है। तांत्रिक योग, हठयोग, राजयोग, कुण्डलीनी योग ये सभी अभ्यास पर आधारित मार्ग हैं अतः इनमें ईश्वर प्राप्ति के लिए प्राणायाम की साधना परम आवश्यक है और प्राणायाम को साधने के लिए आसन, यम, नियम आदि का पालन जरूरी है जो गुरू के निकट ठहर कर ही किया जा सकता है, घर-संसार को छोड़कर ही किया

जा सकता है। कठोर यम-नियमों का पालन करके ही यह संभव हो सकता है वरना प्राण की शक्ति का प्रयोग यदि सावधानी से नहीं किया जाए तो यह शरीर के किसी भी अंग में विकति पैदा कर सकती है।

उपनिषद दर्शन आज से तीन हजार साल पहले की भारतीय संस्कति का दर्पण है। जिसमें इतना उच्चकोटी का ज्ञान पिरोया हुआ है जो आज भी अत्यंत र्तकसंगत और गूढ़ रहस्यों से परिपूर्ण मालूम पड़ता है। उपनिषद ज्ञान विश्व के सम्पूर्ण ज्ञान के सामने आज भी अतुलनीय है।

उपनिषद दर्शन में चर्चा का मुख्य केन्द्र आत्मा और ब्रह्म है। ब्रह्म को मुख्य रूप से दो रूपों में प्रस्तुत किया गया है। एक ज्योति स्वरूप ब्रह्म के रूप में और दूसरा नाद ब्रह्म या अक्षर ब्रह्म के रूप में। जब नियमित रूप से अभ्यास किया जाता है, मन अन्तर्मुखी होने लगता है तो योगी को अपने ही शरीर में एक ध्वनी सुनाई देने लगती है जिसे योगीजन नाद कहते हैं। यह नाद ही ओ३म् है, जो किसी प्राकतिक या सांसारिक वस्तु द्वारा पैदा नहीं होता है बल्कि अपने आप ही शरीर में प्रकट होता है। यह किसी वस्तु के आपस में टकराने से पैदा नहीं होता है इसलिये इसे 'अनाहत नाद' कहा जाता है। यही ध्वनी परमात्मा द्वारा संसार के सजन के समय उत्पन्न होने वाली आदि ध्वनी है। इसी सत्य को अब विज्ञान भी अपने तरीके से सिद्ध कर रहा है।

उपनिषद कहता है कि ओ३म् स्वयंभू (Self-existant) अनहद है। संसार की जितनी भी ध्वनियां हैं, वे सभी दो वस्तुओं के आपस में टकराने से या दो अंगों के बीच वायु में घर्षण से पैदा होती हैं। दो वस्तुओं के टकराव के बिना सांसारिक ध्वनी या शब्द संभव ही नहीं है। इसलिये यह ध्वनी क्षत, क्षर या खंण्डित ध्वनी है, जबकि ऊँ ऐसी ध्वनी है जो स्वयं ही इस ब्रह्माण्ड में घटित हो रही है जो आघातरहित है, संघर्ष रहित, अखंडित, अक्षत या अक्षर ध्वनी है। जब मन की चंचलता समाप्त हो जाती है, चित के अंदर उठ रही समस्त गति पूर्ण रूप से थम जाती है और मन विचार शून्य हो जाता

है, किसी भी बाहरी शब्द या भाषा का पूरी तरह से मौन हो जाता है, भावों का उदय होना भी समाप्त हो जाता है, ऐसे गहन मौन और परम शांति की अवस्था में जो शेष रह जाता है वही ऊँ है जिसकी आवाज को योगी समाधिस्थ होकर सुनता है। इस सजनहार शब्द (नाद) के होने की पुष्टि बाइबिल में भी की गई है कि आदि में शब्द (Word)था, शब्द परमात्मा के साथ था, शब्द ही परमात्मा था और इसी शब्द के द्वारा सारी सष्टि का जन्म हुआ (जोहन 1:1-3)। सूफी साहित्य में इस शब्द का वर्णन खूब मिलता है।

इतना विशद्ध और ऊंची श्रेणी का ज्ञान होते हुए भी क्या कारण है कि भारत का यह ज्ञान जन साधारण से दूर ही रहा और विश्व में अपना स्थान नहीं बना पाया? इसके तीन मुख्य कारण थे - एक तो यह ज्ञान ऐसा ज्ञान था जो साधारण व्यक्ति की समझ से बाहर था। जो योग्य होता था केवल उसे ही यह ज्ञान प्रदान किया जाता था। नीची जाति के लोगों को इस ज्ञान का अधिकारी नहीं समझा जाता था। दूसरा कारण यह था कि इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए जो मार्ग निर्धारित किया गया था वह कठिन था, और किसी योग्य गुरू की शरण में रहकर ही इसकी जरूरतों को पूरा किया जा सकता था। समाज नहीं बल्कि वन की स्थली इसके लिए उपयुक्त भूमि थी। आत्मिक जीवन जीने के लिए शरीर, प्राण और मन की पवित्रता पर अधिक से अधिक बल दिया जाता था। इसके लिए जिन नियमों का पालन आवश्यक था वह साधारण वयक्ति के वश की बात नहीं थी, अतः इस ज्ञान को प्राप्त करने का मार्ग भी व्यावहारिक नहीं था। तीसरा कारण यह था कि यह सारा ज्ञान संस्कत भाषा में लिखा गया था जो साधारण व्यक्ति की भाषा नहीं थी। इस ज्ञान की थाह पाने के लिए सबसे पहले व्यक्ति को किसी योग्य गुरू से इस भाषा का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक था। यह इसलिए भी था क्योंकि अनधिकारी जीवों से इस ज्ञान को गुप्त रखा जाता था। अनधिकारी लोगों को जब कोई कीमती वस्तु हाथ

लग जाती है तो वह इसका प्रयोग अपने स्वार्थ के लिए असहाय और निर्बल लोगों के शोषण करने में किया करते हैं। इसलिए इस ज्ञान को गुप्त ज्ञान कहा जाता था।

उपनिषद काल के तुरंत बाद महात्मा बुद्ध का आगमन हुआ। उन्होंने जीवन के रहस्य को पाने के लिए घर का त्याग किया। बारह वर्ष तक जंगलों में कठिन तपस्या करते हुए इस आध्यात्मिक ज्ञान का गहन अध्ययन किया और यह समझने का प्रयत्न किया कि क्या यह उच्च कोटि का ज्ञान मनुष्य को दुःख से छुटकारा दिलवा सकता है? क्या यह ज्ञान सामाजिक प्राणी के दुःखी जीवन में प्राण डाल सकता है? क्या यह ज्ञान और इसे प्राप्त करने का मार्ग साधारण जन की पहुंच में हो सकता है? वे राज परिवार से सम्बन्ध रखते थे इसलिए जन कल्याण की भावना उनके खून में कूट-कूट कर भरी हुई थी इसलिये वे आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा लोगों को दुःखों से छुटकारा दिलवाना चाहते थे और अपना संदेश लेकर समाज के हर व्यक्ति के पास जाना चाहते थे।

उनकी भाषा सरल थी। उन्होंने अपने व्याख्यान के लिए वह भाषा अपनाई जिससे साधारण व्यक्ति को प्यार था। नेपाल और आसपास की तराई में उस समय पाली भाषा का प्रयोग किया जाता था इसलिये उन्होंने इसी भाषा को माध्यम बनाकर अपना ज्ञान लोगों में बांटना आरम्भ किया। संस्कत भाषा से परहेज किया। हर व्यक्ति चाहता है कि उसका जीवन शांति से व्यतीत हो और उसके दुःखों का अन्त हो। इसलिये अधिकतर लोग उनकी तरफ खिंचते चले गये।

लोगों के सामने पहली समस्या भाषा की थी क्योंकि अधिकतर ज्ञान संस्कत भाषा में लिपिबद्ध किया गया था। इसके अतिरिक्त हर व्यक्ति को इस ज्ञान का अधिकारी नहीं समझा जाता था। लेकिन महात्मा बुद्ध ने अपने ज्ञान को उंगलीमाल जैसे डाकू तक भी पहुंचाने का प्रयत्न किया और उन्हें परिवर्तित किया, उनका हृदय परिवर्तन किया। अनेक ऐसे लोगों को

समाज की मुख्य धारा के साथ जोड़ा जिन्हें लोग नफरत की दष्टि से देखते थे।

कहते हैं कि उस डाकू ने एक हजार आदमियों की हत्या करके उनकी उंगलियों से अपने लिए माला बनाने की शपथ ली थी इसलिये लोग उस डाकू को उंगलीमाल कहकर पुकारते थे। वह जिधर भी जाता था लोग डर के मारे सहम जाते थे और जान बचाकर भागने लगते थे। वह नौ सौ निनानवे लोगों की हत्या कर चुका था, उनकी उंगलियां काटकर अपनी माला बना चुका था। उसे अपनी शपथ पूरी करने के लिए एक हजारवें व्यक्ति की तलाश थी। महात्मा बुद्ध को भी उसकी इस शपथ के बारे में पता लगा। पता लगते ही वे उंगलीमाल की तालाश में जंगल की तरफ निकल पड़े। लोगों ने बहुत मना किया लेकिन वह नहीं माने। ढूंढ़ते हुए उंगलीमाल तक पहुंच गए। उनका तेज से भरा हुआ चेहरा और सामने उंगलीमाल था। बुद्ध की नजर उंगलीमाल के चेहरे से हट नहीं रही थी। वे टकटकी लगाए उसकी तरफ देखते जा रहे थे जैसे उसके अन्दर आने-जाने वाले हर भाव को पढ़ रहे हों। उंगलीमाल ने उस दिन तक इतना खौंफरहित व्यक्ति नहीं देखा था। वह भयभीत हुआ जा रहा था जैसे महात्मा बुद्ध के साहस ने उसकी आधी ताकत अपने अन्दर खींच ली हो। वह पीछे हटता जा रहा था और चिल्ला रहा था कि तू नहीं जानता है मैं कौन हूं। मेरा नाम उंगलीमाल है। लोग मेरा नाम सुनकर सुन्न हो जाते हैं। मुझे आखरी व्यक्ति की तालाश है इसलिये मैं तुम्हारी हत्या कर दूंगा। तुम यहां से भाग जाओ। जब महात्मा बुद्ध अपनी जगह से नहीं हटे तो वह कहने लगा कि लगता है तुम मेरे हाथों से मरना चाहते हो इसलिए अब तुम्हारी मौत निश्चित है। बुद्ध कहने लगे कि मैं जीवित कहां हूं, मैं तो पहले ही मर चुका हूं। मैंने मत्यु का द्वार देख लिया है। मैं शरीर में रहते हुए भी शरीर विहीन हूं। इस शरीर के साथ मेरा अंशमात्र जोड़ बचा हुआ है। मैं शरीर के इस संबंध से भी छुटकारा पाना चाहता हूं ताकि परम् शांति को

प्राप्त कर सकूं। मैंने सोचा कि मेरा यह कार्य तुम्हारे अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं कर सकता है, इसलिए मैं तुम्हारी खोज में निकल पड़ा। मेरी मौत मेरे लिए परम् सौगात होगी जो मुझे इस संसार से छुटकारा दिला सकेगी और इस बात से मुझे ओर भी अधिक संतुष्टि होगी कि आखरी वक्त में भी यह शरीर किसी के काम आया। इससे तुम्हारी शपथ भी पूरी हो सकेगी। लेकिन अब मुझे नहीं लगता है कि तुम ऐसा कर सकोगे क्योंकि मैंने तुम्हारे चेहरे के अंदर देखा है कि तुम्हारे अन्दर भी किसी कोने में एक व्यक्ति ऐसा बैठा हुआ है जो प्रेम का भूखा है, जो दया से भरा हुआ है और जो अपने मन की सारी बातें किसी को बता कर अपने सारे गुनाह स्वीकार कर लेना चाहता है। किसी के चरणों में अपना माथा रखकर जोर-जोर से रो लेना चाहता है। वह व्यक्ति तुम्हारे अन्दर से बाहर आने के लिए तड़फ रहा है लेकिन तुम बार-बार उसे रोक देते हो और उसका गला दबाए रखते हो। अब वह व्यक्ति तुम्हारे अन्दर नहीं ठहर सकता है। वह बाहर आने के लिए तड़फ रहा है इसलिए अब मुझे लगता है कि तुम्हारी मौत निश्चित है। अब तुम मुझे नहीं मार सकते हो। बुद्ध के प्यार और करूणा से भरे शब्द सुनकर उंगलीमाल के अन्दर का डाकू मर रहा था, उसकी आत्मा का प्रकाश उसके शरीर और मन में फैल रहा था। उसके अन्दर का भद्र पुरूष फूट पड़ा और वह बुद्ध के चरणों में गिरकर फूट-फूट कर रोने लगा। बुद्ध ने उसे उठाया और अपने हृदय से लगा लिया।

सबसे पहली बात तो यह कि बुद्ध द्वारा दिए जाने वाले ज्ञान की भाषा जन साधारण की भाषा थी। दूसरी यह कि उस ज्ञान में सभी सहभागी हो सकते थे, उसमें ऊंच-नीच, जाति-पाति का कोई भेदभाव नहीं था। वैदिक ज्ञान के प्रचार में वर्णभेद बहुत बड़ी रूकावट थी और उस पर एक विशेष वर्ण के लोगों का अधिकार था। वैश्य या शुद्र ब्रह्मज्ञान के अधिकारी नहीं समझे जाते थे। तीसरी बात यह कि बुद्ध ने मध्यम मार्ग की खोज की जिसको लोग अपना सकते थे। यम-नियम तो अवश्य थे लेकिन

वे केवल भिक्षुओं के लिए अधिक सख्त थे।

जहां वैदिक या उपनिषद मार्ग शारीरिक तपस्या या प्राण के स्तर से आरम्भ होता था, प्राणायाम जिसके लिए एक आवश्यक अंग था, वहीं बुद्ध का मार्ग मन के चिंतन-मनन से आरम्भ होता था। उनका लक्ष्य वैचारिक दष्टि से मनुष्य को ऊंचा उठाना था। वे लोगों को समझाना चाहते थे कि उनके दुर्भाग्य के लिए कोई ओर ताकत जिम्मेदार नहीं है बल्कि उनके अपने कर्मो के कारण वे इस संसार में आते हैं और दुःख उठाते हैं। इन दुःखों का मुख्य कारण तष्णा है जिसके अधीन होकर मनुष्य अपने कर्मो का लेखा बढ़ाता रहता है और पतन की तरफ जाता रहता है। जब तक कर्मो का पूरी तरह से नाश नहीं हो जाता तब तक मनुष्य बार-बार जन्म लेता है और दुःख झेलता रहता है लेकिन जब इस तष्णा की जड़ काट दी जाती है तो नए कर्म नहीं बनते हैं और पुराने कर्मो का क्षय हो जाता है। इसके बाद मत्यू के बाद मनुष्य शरीर के सारे तत्व या धर्म अपने-अपने धर्मो में विलीन हो जाते हैं, बाकि कुछ नहीं बचता है अर्थात् न कोई आत्मा और न ही कोई परमात्मा। केवल शून्य ही शेष रह जाता है।

जब बौद्ध धर्म का उदय हुआ उस समय बुद्ध के सामने दो तरह की बहुत ही विषम परिस्थितियां थी। एक तो वैदिक कर्मकाण्ड और दूसरी नास्तिकता का बढ़ता प्रभाव। उपनिषद ज्ञान इतना विशद्ध और उच्च कोटि का ज्ञान था कि वह साधारण व्यक्ति की समझ से परे था। आत्मा, परमात्मा तथा स्वर्ग और नरक के नाम पर पुरोहित लोगों का शोषण कर रहे थे। यज्ञ, उत्सव आदि अनुष्ठानों में पशु-बलि, नर-बलि, पशु-दान, अन्न और धन दान के नाम पर आहुति देने का कार्य पुरजोर से प्रचलित था। दूसरी तरफ यह प्रकति का नियम प्रतीत होता है कि जब भी ज्ञान असीम ऊंचाईयों को छूता है उस समय अज्ञान का अधंकार भी उसकी छाया बनकर उसके साथ-साथ चलता है। यदि ज्ञान के प्रभाव से मनुष्य का मन और बुद्धि प्रकाशित हो उठते हैं तो इसी ज्ञान के प्रभाव से ज्ञान

की कमजोरियां भी उजागर होती हैं। यदि ज्ञान का ज्ञान बढ़ता है तो अज्ञान का ज्ञान भी कदम से कदम मिलाकर चलता है। किसान जब खेती की बारीकियों से वाकिफ होता है तो उसे उसके अच्छे पक्ष के साथ-साथ बुरे पक्ष का ज्ञान भी होता है। अतः जब भी कोई सजनात्मक शक्ति का उदय होता है तो उसके साथ-साथ उसी के अन्दर से उसे नष्ट करने वाली एक विनाशक शक्ति भी जन्म लेती है यही प्रकति का नियम है। यदि ऐसा नहीं हो तो प्रकति का विकास न हो सकेगा, वह नित्य नयी रचना को जन्म न दे सकेगी तथा मनुष्य के जीवन की गति अवरूद्ध हो जाएगी।

अतः एक तरफ उपनिषद ज्ञान था तो दूसरी तरफ नास्तिकता का बढ़ता प्रभाव चार्वाक या लोकायत दर्शन उसी समय की पैदायश है। आजीविका दर्शन भी बुद्ध से पहले विकसित हुआ था। चार्वाक प्रत्यक्ष इन्द्रियों या प्रत्यक्ष संसार से परे किसी अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता था। आजीविकाज कहते थे कि चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि एक समय ऐसा आएगा जब सभी मनुष्य अन्तिम मुक्ति में चले जाएंगे। पाप और पुन्य का कोई आधार या कारण नहीं हैं। सभी वस्तुएं शक्तिविहिन हैं तथा अपने भाग्य, वातावरण या अपनी प्रकति के अनुसार वे एक अवस्था से दूसरी अवस्था में बदलती रहती हैं। इसलिए जीवन को खुशी के साथ जीओ , नाचो, गाओ और आनन्द मग्न रहो। व्यक्तिगत मुक्ति के लिए इसमें कोई स्थान नहीं है। वे पुनर्जन्म की धारणा को स्वीकार करते थे और यह भी मानते थे कि एक मनुष्य की आत्मा दूसरे मनुष्य के मत शरीर में प्रवेश कर सकती है।

चार्वाक किसी भी तरह के भाग्य, पुनर्जन्म, आत्मा या परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। उनके लिए प्रत्यक्ष संसार ही अन्तिम सत्य है। वे कहते थे -

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कत्वा घतं पिवेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।

अर्थात् जब तक जीओ सुख से जीओ, ऋण लो और घी पीओ। अन्त समय में यह शरीर जलकर भस्म हो जाएगा उसके बाद संसार में पुनः आगमन कैसा?

महात्मा बुद्ध को इन दो विषम परिस्थितियों से जूझना पड़ा। लोगों को वैदिक कर्मकाण्डों से मुक्ति दिलाना उनकी सबसे बड़ी चुनौती थी जिसके लिए कई जगह उन्हें अपमान भी सहना पड़ता था, उन्हें पत्थर मारे जाते थे। आस्तिक उन्हें नास्तिक कहते थे क्योंकि आत्मा-परमात्मा के सवाल पर वे चुप रहते थे और मात्र इतना ही संकेत करते थे कि जो वस्तु अनुभव के परे की वस्तु है और जो अनुभव इन्द्रियातीत है उसके बारे में कुछ भी कहना अनुचित है। नास्तिक उन्हें आस्तिक कहते थे क्योंकि उनका जीवन और मार्ग एक प्रकार से मुक्ति और परम् शांति की तरफ ले जाने वाला मार्ग था जिसका मुख्य अंग था ध्यान जो गहन चिंतन में से होकर गुजरता था, मन की पवित्रता और विचारों की शुद्धता जिसके लिए अति आवश्यक थी।

बुद्ध ने ऐसे मार्ग की खोज की जो सरल था, जिसके लिए गुरू के पास ठहरकर अभ्यास करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। जिसमें जाति-पाति, वर्ण आदि का कोई भेद नहीं था। कोई भी इच्छुक व्यक्ति कहीं भी रहकर इस मार्ग को अपना सकता था। यज्ञोपवित, मंत्रोच्चार, जनेऊ धारण करना, संस्कत भाषा का ज्ञान, प्राणायाम किसी की भी आवश्यकता नहीं थी। आवश्यकता थी तो वह थी मन की पवित्रता। किसी भी परिस्थिति में मन से किसी के प्रति भी बुरा विचार नहीं पैदा होना चाहिए। न नफरत न किसी के प्रति प्यार, हर तरह के बंधन से मुक्त। किसी भी तरह की सांसारिक इच्छा या तष्णा मुक्ति में बाधक। मध्यम अवस्था जिसमें न तो कठोर तपस्या हो और न ही वासनारंजित जीवन।

यह ऐसा मार्ग था जिसमें किसी भी बिचोलिए, एजेन्ट या पुरोहित

की आवश्यकता नहीं थी। व्यक्ति को स्वयं ही स्वयं को ऊंचा उठाना था। उनका मुख्य नारा था - अप्प दीपो भव अर्थात् स्वयं के अन्दर दीपक बनो। अपना भाग्य हमें स्वयं बनाना होगा, इसके लिए कोई दूसरा व्यक्ति या परलौकिक शक्ति जिम्मेदार नहीं है। हमारे दुःखों का कारण हम स्वयं ही हैं। अतः हमें स्वयं ही इनका निवारण करना होगा। इलाज कहीं बाहर नहीं है।

बुद्ध का मुख्य लक्ष्य सुकरात और कपिल मुनि की तरह व्यक्ति को अज्ञान से बाहर निकालना था और उसके लिए जरूरी था मन का गहन मंथन। यदि व्यक्ति को वास्तविकता का ज्ञान नहीं है तो वह कितने ही यज्ञ करता रहे, कितने भी शास्त्रों का पाठ करता रहे, कितनी ही तपस्या करता रहे या प्राणायाम का अभ्यास करता रहे, कितने भी तीर्थ, व्रत या पूजा-पाठ करता रहे, कितना ही धन दान करता रहे, उसे कभी भी मन की शांति प्राप्त नहीं हो सकती है। मन में यदि हलचल है तो कोई भी उपाय सार्थक कैसे हो सकता है?

अतः महात्मा बुद्ध का मार्ग मन से आरम्भ हो रहा है, सरल मार्ग है क्योंकि हर व्यक्ति की चेतना की बैठक मन पर है। जहां पर चेतना की बैठक होती है रास्ता वहीं से आरम्भ हो रहा है, वहीं से रास्ते की पकड़ भी आसान होती है। जिस कार्य में मन रस ले रहा है यदि रास्ता उसी रस में से होकर निकले तो वह अधिक रोचक और कारगर होता है। इसीलिए हर व्यक्ति अपने रस के अनुसार मार्ग का चयन कर रहा है। धर्म की पूर्ति कर रहा है। हर व्यक्ति चाहे वह आध्यात्मिक है या सांसारिक मन का रस ले रहा है। मन के रस से वंचित कोई भी व्यक्ति एक कदम आगे नहीं बढ़ सकता है। आत्मा जितनी अधिक मजबूत होती चली जाती है मन उतना ही समरस होता चला जाता है। वह हर समय अमीरस का पान करने लगता है। मन के अतिरिक्त शरीर की दूसरी इन्द्रियां भी अमीरस से ओतप्रोत होने लगती हैं, नई जीवन शक्ति का अनुभव करने लगती हैं।

क्रियात्मक दष्टि से बुद्ध वही बात कर रहे हैं जो वैदिक और उपनिषदिक ऋषियों ने कही थी। दोनों का लक्ष्य एक ही था, चित्त के अन्दर उठ रही वतियों का शमन। उपनिषद कालीन ऋषियों द्वारा दिया गया मार्ग कठिन था, दुरूह था। दूसरी भी कई प्रकार की चुनौतियां और सीमितताएं थी लेकिन बुद्ध द्वारा दिया गया मार्ग खुला था, सभी के लिए था और आसान था। इसीलिए उपनिषद मार्ग श्रेष्ठ मार्ग होते हुए भी संसार में नहीं फैल सका और बौद्ध धर्म देखते-देखते एशिया के काफी हिस्से में फैल गया।

महात्मा बुद्ध की तरह ईसा मसीह भी मन से आरम्भ हो रहे हैं वे कहते हैं -

Take no thought from the morning until the evening and from the evening until the morning.

बुद्ध ने कहा कि यदि कोई भी कार्य है तो उसका कारण अवश्य है। संसार में यदि दुःख है तो उसका कोई कारण अवश्य है। उस कारण की जड़ काटने पर ही कार्य रूपी दुःख से छुटकारा पाया जा सकता है। यह कारण है, तष्णा या वासना। दुःख को समाप्त करने के लिए वासना को जड़ से उखाड़ना जरूरी है। दूसरी बात जो उन्होंने महत्वपूर्ण कही कि मनुष्य का शरीर पांच भिन्न-२ तत्वों या धर्मो से बना हुआ है - रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और चेतना। जब वासना रूपी कारण को जड़ से समाप्त कर दिया जाएगा तो इन धर्मो का आपस में बंधने का कोई कारण नहीं रहेगा और ये बिखर जाएंगे तथा अपने-अपने धर्मो में जाकर मिल जायेंगे। मनुष्य का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। छोटा अस्तित्व समाप्त होकर विशाल अस्तित्व में विलीन हो जाएगा और हमेशा के लिए मनुष्य का दुःखों से छुटकारा होकर वह निर्वाण को प्राप्त हो जाएगा। वह ब्रह्माण्ड की विशालता में समा जाएगा। Smaller self will be dissolved into the larger self; उसका छोटा सैल्फ ब्रह्माण्ड की विशाल सैल्फ (धर्मकाया) में समा

जाएगा। उनका तीसरा महत्वपूर्ण संदेश था कि मन से किसी के लिए भी बुरे विचारों की तरंग मत निकालो चाहे परिस्थितियां कुछ भी हों। एक बौद्ध महात्मा कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति आरी से तुम्हारे शरीर के अंग काटने लगे तो उसके प्रति भी नफरत या बुरे विचार की कोई तरंग यदि तुम्हारे मन में उठी तो वह संघ का सच्चा शिष्य नहीं है। धम्मपद में कहा गया है कि जो कुछ हम हैं वह हमारे विचारों का परिणाम है। विचारों से ही हमारा चेहरा और शरीर किसी विशेष आकार में ढ़लते हैं। जब हम कोई बुरा विचार करते हैं तो दुःख इस प्रकार से हमारा पीछा करता है जैसे गाड़ी का पहिया उस बैल के पीछे-२ चल देता है जो उस गाड़ी को खींच रहा है और यदि हम अच्छा विचार करते हैं तो सुख हमारे साथ ऐसे चल देता है जैसे किसी के साथ उसकी परछाई जो कभी पीछा नहीं छोड़ती। बुद्ध का चौथा महत्वपूर्ण संदेश है अष्टांगिक मार्ग जिसका पालन करने से मन में स्थिरता आ जाती है, वह शुद्ध हो जाता है और मनुष्य वासना का दास नहीं बनता। उसके सभी पुराने संस्कार नष्ट हो जाते हैं। वह कारण ही नष्ट हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप उसे बार-बार जन्म लेना पड़ता है।

बुद्ध द्वारा बताया गया मार्ग वैज्ञानिक है, साईन्टीफिक है। यह मार्ग उपनिषदिक मार्ग से सरल है, तर्क संगत और कारण सहित है, रीजनेबल है, लाजिकल है लेकिन जीसस द्वारा दिया गया मार्ग और भी अधिक सरल है क्योंकि जीसस का जन्म जहां पर हुआ था वहां के लोग उस समय आध्यात्मिक ज्ञान से कोरे थे। उनकी बुद्धि बहुत सरल थी, किसी कार्य और कारण को नहीं समझ सकती थी। उन्हें किसी विज्ञान की समझ नहीं थी। बुद्ध के समय से पहले भारत का आध्यात्मिक ज्ञान अपने चरम बिन्दु पर पहुंच चुका था इसलिए बुद्ध वैज्ञानिक हो सकते थे। उनकी बातें लाजिकल हो सकती थी। लेकिन ईसा मसीह ऐसे लोगों में ज्ञान का प्रचार कर रहे हैं जो मछुवारे थे, गडरिए थे। उनके लिए रोटी का प्रश्न मुख्य था। उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान से कोई सरोकार नहीं था। उनके लिए लाजिक नहीं रोटी

महत्वपूर्ण थी। उनके लिए आत्मा की प्राप्ति महत्वूपर्ण नहीं थी, शरीर विहिनता या बाडीलैसनैस महत्वपूर्ण नहीं थी, मन की शुद्धि महत्वपूर्ण नहीं थी बल्कि जीसस के वे चमत्कार महत्वपूर्ण थे जिनमें वे पत्थरों को रोटी में बदल देते हैं, बिमारों को ठीक कर देते हैं, मुर्दा व्यक्ति को जीवित कर देते हैं। उनके लिए वे चमत्मकार ज्यादा महत्व रखते हैं कि जीसस के हाथ लगाने से जाल के अन्दर अधिक मच्छलियां फंस गई हैं। पानी को हाथ लगाने से शराब जैसा पेय पदार्थ बन गया है। उनके छूने से मनुष्य के ऊपर से शैतान या प्रेत आत्मा की छाया हट गई है। ये लोग अंधविश्वासों से घिरे हुए थे और रोजी-रोटी जिनकी समस्या थी। उनके अन्दर इतनी क्षमता नहीं थी कि वे जीसस के अन्दर झांक सकें और देख सकें कि उनके अन्दर क्या घटित हुआ है, उनकी आत्मिक अवस्था क्या है? यही जीसस की व्यथा है जो उनको फांसी तक ले गई।

चर्च के पोप और पादरी भी जीसस की आन्तरिक अवस्था से वाकिफ नहीं हैं, उनके वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ हैं। उनके शब्द रूप (वर्ड) को नहीं देख पाए हैं और न ही देखने का प्रयत्न है क्योंकि स्वयं के अन्दर जाने के सभी द्वार उन्होंने बन्द कर दिए हैं। केवल एक द्वार खुला है और वह है चर्च का द्वार। ईट और पत्थरों का स्थूल द्वार अवश्य खुला है लेकिन सुक्ष्म द्वार को बन्द कर दिया गया है। घोषणा कर दी गई है कि मनुष्य को एकमात्र चर्च के द्वारा ही मोक्ष प्राप्त हो सकती है इसके अतिरिक्त कोई दूसरा जरिया नहीं है।

जीसस कौन है? राम व कष्ण कौन हैं? मुहम्मद या नानक कौन हैं? ये किसी व्यक्ति का नाम नहीं हैं। बल्कि इस सष्टि की सूक्ष्म से सूक्ष्मतम चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं जिस चेतना से सष्टि का कालचक्र घूम रहा है, सारी गति हो रही है। युग आ रहे हैं और जा रहे हैं। अतः सारी गति के थमने के बाद ही उस चेतना की झलक हमें मिल सकती है। जीसस या राम या कष्ण तत्व के दर्शन करने के लिए हमें इस सारी गति या घूर्मण

से बाहर जाना होगा। हमारे शरीर में वह सूक्ष्म से सूक्ष्म गति विचारों की गति है, हमें उस गति से भी बाहर जाना होगा। उस गति से भी बाहर जाने के लिए हमें विचार के मध्य में बहने वाली ताकत को प्रत्यक्ष करना होगा। चेतना की उस ताकत से रूबरू होना होगा जो वाहन बनकर विचार को चला रही हैं। यह तभी होगा जब हम उस ताकत के केन्द्र में गूंज रहे शब्द (वर्ड) तक पहुंच सकेंगे, उसे पकड़ सकेंगे। उसके साथ एकमएक होकर जीसस की चेतना में स्थिर हो सकेंगे। इसीलिए जीसस कह रहे हैं कि विचारों से पूरी तरह बाहर निकलो। सुबह से शाम तक कोई विचार धारण नहीं करो और शाम से सुबह तक कुछ नहीं विचार करो।

Take no thought from the morning until the evening
and from the evening until the morning.

बुद्ध मन को वाहन बनाकर मन से बाहर जा रहे हैं। गहन चिंतन-मनन करने के बाद मनातीत अवस्था को प्राप्त कर रहे हैं। उपनिषद का आधार प्राण है। उपनिषद प्राण से आरम्भ होकर मन को पार कर रहे हैं, जीसस भी मन की हलचल से बाहर निकलने के लिए मन को केन्द्र बना कर चल रहे हैं। वे मन की शून्यता से होते हुए संसार में वापिस आ रहे हैं जबकि बुद्ध मन की शून्यता से होकर संसार से बाहर जाने की तैयारी कर रहे हैं। वे कहते हैं कि संसार मिथ्या है, एक दुःस्वप्न है। वह संसार को सन्यास की तरफ मोड़ रहे हैं जबकि जीसस मनुष्य को संसार में वापिस ला रहे हैं। यहीं पर स्वर्ग का साम्राज्य स्थापित करने पर जोर दे रहे हैं। उनके मार्ग में खान-पान या किसी पहनावे पर विशेष आपत्ति नहीं है जबकि बौद्ध धर्म में कुछ आचरण आवश्यक है जिनका कठोरता से पालन किया जाता है। विशेष आचारण और खान-पान पर पाबन्दियां साधारण मनुष्य को आध्यात्मिक मार्ग पर जाने से रोकती हैं। यह इसलिये है क्योंकि बौद्ध धर्म आत्म-विश्वास का मार्ग है। स्वयं के अन्दर से स्वयं को खोजने का मार्ग है और आत्म-विश्वास के लिए आत्म-अनुशासन

का होना अति आवश्यक है। आत्म-अनुशासन और आत्म-विश्वास तभी सम्भव है जब व्यक्ति शरीर और मन को अनुशासन में रखे अर्थात् शारीरिक और नैतिक अनुशासन पर कायम रहे। मन से ही व्यक्ति कमजोर है और मन से ही ताकतवर है।

ईसाई धर्म आत्म-विश्वास का नहीं श्रद्धा का मार्ग है। यह कहता है कि मनुष्य पाप का परिणाम है, काम की उत्पत्ति है, सैक्स का परिणाम है। काम या सैक्स को इस धर्म में पाप माना जाता है सिन कहा जाता है। इसलिये मनुष्य के शुद्ध होने का कोई कारण नहीं है। वह तभी इस पाप से मुक्ति प्राप्त कर सकता है जब वह अपने पाप का प्रायश्चित कर प्रभू की शरण में चला जाए। ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म आत्म-केन्द्रित नहीं हैं बल्कि आकाश में स्थित किसी खुदा पर केन्द्रित हैं। इसलिये इन धर्मो ने स्वयं के अन्दर जाने का मार्ग अवरूद्ध कर लिया है। मौलवी या पादरी के माध्यम से ही आकाश में बैठे हुए खुदा से सम्पर्क हो सकता है। जबकि ईसा मसीह स्वयं कहते हैं The Kingdom of God is within you कि परमात्मा तुम्हारे अन्दर है । ईसा मसीह की शिक्षाओं को पूरी तरह उल्ट दिया गया है। ध्यान करने पर पाबन्दी लगा दी गई है ताकि मनुष्य स्वयं के अन्दर न जा सके और पोप या पादरी को चुनौती न दे सके। इन धर्मो में जिसने भी ऐसा किया उसे यातनांए दी गई, अत्यधिक कष्ट दिए गए, मौत की सजाएं दी गई।

जीसस सांसारिक व्यवहार में रहते हुए अध्यात्म की बात कह रहे हैं। संसार में ही परमात्मा का साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं। खान-पान और पहनावे पर भी कोई विशेष पाबन्दियां नहीं हैं इसलिये जीसस का मार्ग बुद्ध के मार्ग से ओर भी सरल है। नैतिक अनुशासन की कुछ एक बातों का पालन करके व्यक्ति इस मार्ग पर चल सकता है। संसार दुःखों का घर है इस आर्यसत्य की पहचान करवाना महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि संसार में रहते हुए प्यार से रहना अधिक महत्व रखता है। अपने

माता-पिता का सम्मान करो, अपने पड़ौसी से प्यार करो, परमात्मा से प्यार करो, चोरी न करो, व्यभिचार से दूर रहो, हिंसा न करो, झूठी गवाही मत दो आदि कुछ इस धर्म के मुख्य आदेश हैं जिनका पालन करना चाहिये। अतः ईसा मसीह द्वारा दिया गया मार्ग बहुत ही सरल था जिस पर साधारण व्यक्ति बहुत ही आसानी से चल सकता था। इसी वजह से ईसाई धर्म देखते-देखते संसार के बहुत बड़े हिस्से में फैल गया। जन साधारण का धर्म बन गया लेकिन व्यक्तिगत मुक्ति से उतना ही अधिक दूर चला गया। धर्म को फैलाने के लिए यह भय दिखाया गया कि संसार का अंत निकट है इसलिए जीसस के सामने अपने गुनाहों को कबूल करो और चर्च की सदस्यता ग्रहण करो ताकि प्रभू के साम्राज्य में हिस्सेदार बन सको। दूसरी तरफ से यह लालच दिया गया कि जो व्यक्ति जीसस के नाम पर जितना अधिक त्याग करेगा, स्वयं की कुर्बानी देगा उसे परमात्मा के साम्राज्य में उतना ही बड़ा ओहदा मिलेगा, उतनी ही बड़ी पदवी मिलेगी, प्रभु का सम्मान मिल सकेगा। लोगों में ईसाई बनने की होड़ लग गई और देखते - देखते चर्च धन, बल और राजनीति की एक विशाल संस्था बन गया।

ईसाई धर्म जन साधारण का धर्म तो अवश्य बन गया लेकिन परमात्मा की उच्चतम चेतना से उतना ही दूर चला गया। शब्द (वर्ड) का सिद्धांत मात्र बाइबिल के पन्नों तक सीमित रह गया। जो धर्म जन-साधारण की इच्छा और प्रवति को ध्यान में रखकर जारी किया जाता है उसमें आत्मिक तत्व की गुंजायश काफी हद तक कम हो जाती है। और जिस धर्म का प्रचार लालच देकर किया जाए वहां तो आत्मा और परमात्मा की चर्चा केवल एक राजनीतिक विषय है। ऐसे धर्म में गुह्यतम तत्व की खोज समाप्त हो जाती है। व्यक्तिगत मुक्ति का मार्ग विलीन हो जाता है। व्यक्ति को अपनी आत्मा की आवाज पर नहीं सामुहिक धर्म की आवाज पर चलना पड़ता है। और जब आत्मा की आवाज को दबा दिया जाता है तो वहां पर धर्म की मौत हो जाती है। व्यक्ति दूसरे का गुलाम हो जाता है।

आजादी समाप्त हो जाती है और गुलामी आरम्भ हो जाती है चाहे वह गुलामी चर्च की है, गुरूद्वारे की है, मन्दिर या मस्जिद की है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

जब आत्मिक स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है तो व्यक्ति उपनिषद के संदेश से वंचित हो जाता है। वह अहम् ब्रह्मास्मि, तत्वमसि या सोहं नहीं कह सकता है। फिर तात्विक दष्टि से वह परमात्मा के साम्राज्य का अभिन्न अंग कैसे हो सकता है? यह सम्भव नहीं है।

जीसस जन साधारण के निकट आ गए हैं लेकिन वे तात्विक दष्टि से भी परमात्मा की चेतना से दूर नहीं हटे हैं क्योंकि वे कह रहे हैं कि मैं परमात्मा का पुत्र हूं और उसके साम्राज्य का वारिश। तत्व का लोप तब हुआ जब जीसस इस संसार से विदा हो गए और उनकी शिक्षाओं को मनचाहे ढंग से लागू कर दिया गया। कह दिया गया कि जीसस किसी कामवासना की पैदायश नहीं थे बल्कि बिना किसी सम्भोग के मां मेरी के गर्भ में आए।

जीसस कोई व्यक्ति नहीं हैं बल्कि शब्द चेतना हैं और उस शब्द चेतना (नादब्रह्म) का ह्रदयस्थ अंग बनकर कोई भी व्यक्ति जीसस की चेतना को धारण कर सकता है। और जीसस (वर्ड) की चेतना में अंग-प्रत्यंग विलीन होकर प्रभू के साम्राज्य का वारिश बन सकता है। जीसस की आत्मा का और साधारण व्यक्ति की चेतना का यह संबंध एक अति सूक्ष्म संबंध है जिससे ईसाई धर्म चूक गया है, मिस कर गया है और धर्म की उच्चतम चेतना को छूने से वंचित रह गया है। जीसस के साकार रूप से आगे नहीं बढ़ पाया है, उनके निराकार और अनादि रूप को आत्मसात नहीं कर पाया है। ट्रिनिटि (त्रैतवाद) के सिद्धांत अर्थात् पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के सिद्धांत पर अटक गया है इसलिए अद्वैतवाद (Non-dualism) के भेद से वंचित रह गया है।

इसी अद्वैतवाद को अनुभव करने के लिए जीसस कह रहे हैं कि

विचारों से बाहर निकलो। व्यक्ति जब भी विचार करता है वह बाहरी वस्तु से जुड़ता है। विचार केवल बाहरी संसार का हो सकता है आत्म तत्व का नहीं। आत्म तत्व कोई विचार नहीं है बल्कि एक जीवन शक्ति है जो तन, मन व बुद्धि को जीवन देती है। वह तो केवल एक बहने वाली सरिता है जिसमें व्यक्ति विचार शून्य होकर बह सकता है। वह तो आनंद है जो मन और बुद्धि से परे की वस्तु है। आनंद का कोई केन्द्र नहीं है। वह जब बहता है तो पैर से लेकर सिर तक तर कर देता है। वह किसी जीसस, कष्ण या मुहम्मद की पहचान नहीं करता क्योंकि ये भी एक विचार है और विचार कभी केन्द्ररहित नहीं हो सकता है। सूक्ष्म से सूक्ष्म विचार भी आनंद की प्रगाढ़ता को कम कर देता है। विचार की एक सीमा है वह सीमा रहित के बारे में कैसे सोच सकता है? विचार एक आकार है जो निराकार का भेद लेने के लिए निराकार के अन्दर कैसे जा सकता है। विचार हमेशा किसी न किसी संदेह से पैदा होता है और परमात्मा संदेह की वस्तु कैसे हो सकता है? विचार सापेक्ष (Relative) ही हो सकता है वह निरपेक्ष (Absolute) के बारे में कैसे सोच सकता है? विचार की एक समयबद्धता है, कालसीमा है और परमात्मा अपने विशुद्ध रूप में कालचक्र का विषय कैसे हो सकता है? इसलिए विचार द्वैतवाद और त्रैतवाद में रहते हुए ही सम्भव है वह अद्वैतवाद का सिंहासन नहीं हो सकता है। विचार अद्वैतवाद तक ले जाने में एक वाहन अवश्य हो सकता है, एक सीढी हो सकता है लेकिन मंजिल नहीं। इसलिए जीसस अपने शिष्यों से कह रहे हैं कि विचार से बाहर निकलो और अद्वैत तत्व का अनुभव करो।

जीसस कह रहे हैं कि सुबह से शाम तक कोई विचार मत धारो, इसके साथ-साथ यह भी कह रहे हैं कि शाम से सुबह तक भी किसी विचार को स्थान मत दो। इन पंक्तियों से दो प्रश्न स्पष्ट होते हैं। एक यह कि क्या व्यक्ति बिना विचार किए भी रह सकता है? दूसरा यह कि क्या व्यक्ति रात को सोते हुए भी विचार करता है जिसे छोड़ने की आवश्यकता है?

विचार किए बगैर कोई भी व्यक्ति नहीं रह सकता है। जिसके मन और बुद्धि विकसित हैं उसके अन्दर कोई भी विचार न उठे यह सम्भव नहीं है। इसीलिए तो मनुष्य की पहचान है कि उसका मन विकसित है। सत्रहंवी शताब्दी में फ्रांस दार्शनिक और महान वैज्ञानिक रेन डेस्कार्टिस जिन्हें आधुनिक दर्शन का नायक भी कहा जाता है कहते हैं कि - I think therefore I am, मैं सोचता हूँ इसीलिए मेरा वजूद है। पौधे और पशु के अन्दर मन अविकसित अवस्था में होता है वहां पर प्राण का कार्य मुख्य है। प्राण ही मन है। लेकिन मनुष्य के अन्दर मनोमय पुरूष विकसित है और मन का उतार-चढ़ाव ही प्राण की गति को निर्धारित करता है। एक खुशी प्रदान करने वाला विचार मनुष्य की चेतना को पल में प्राणवान बना देता है और गम या उदासी देने वाला विचार उसी मनुष्य को पल में प्राणहीन कर देता है। तैत्तिरीयोपनिषद में मन को प्राण से सूक्ष्म और श्रेष्ठ कहा गया है। प्राणमय पुरूष की साधना के बाद ही मनोमय पुरूष की पहचान होती है।

मनुष्य की मुक्ति के लिए या आजादी के लिए मन का विकसित होना आवश्यक है और जहां मन की शक्ति विकसित नहीं है वहां गुलामी है, परतंत्रता है, व्यक्ति दूसरे पर निर्भर करता है। मन के विकसित होने पर ही व्यक्ति ज्ञान की तरफ अग्रसर होता है। और यदि मन विकसित है तो यह कैसे हो सकता है कि उसके अन्दर विचार ही नहीं आए? लेकिन जीसस इसके विपरीत कह रहे हैं कि सुबह से शाम तक और फिर शाम से सुबह तक कोई विचार धारण मत करो।

विचार धारण न करने का अर्थ है कि विचार हमारे अन्दर घर न कर सके, अहंकार जनित न हो। उसका जन्म अहंकार से न हो। विचार यदि स्वयं ही आ रहा है, परिस्थितिवश आ रहा है तो उसके आधार पर मनुष्य को अपना मार्ग निर्धारित करना चाहिए। विचार आरोपित नहीं हो, किसी से लिया गया विचार नहीं हो। जीसस कहते हैं Take no thought अर्थात् कोई विचार धारण मत करो। जो विचार स्वयंजनित है, स्वयं ही आ रहा है

उसे उसकी नियति तक अवश्य पहुंचाओ, वरना हमारे फैसले अधूरे होंगे, संदेहपूर्ण होंगे।

चेतना के अन्दर जो संस्कार जड़े हुए हैं वे अपने समय पर उपयुक्त परिस्थिति मिलते ही जागत हो जाते हैं और अपना प्रभाव डालते हैं तथा मनुष्य के भविष्य का मार्ग भी निर्धारित करते हैं। मनुष्य की चेतना में संस्कारों या पूर्वजन्मों के कर्मो का यह भण्डार पहले से ही विशाल है। संस्कारों के इस भण्डार को बौद्ध धर्म में आलय विज्ञान (House Consciousness) कहा गया है। और यदि इसमें ओर भी नए कर्मो के संस्कार रूपी बीज जमा हो जाते हैं तो यह भण्डार बढ़ता ही चला जाता है।

कर्म और विचार आपस में जुड़े हुए हैं। कर्म के जागत होते ही उससे सम्बन्धित विचार स्वयं ही सतह पर आ जाता है और कोई विचार जो बाहर के वातावरण से लिया गया है नए कर्म के रूप में चेतना के ऊपर अंकित हो जाता है। संचित कर्म का एक हिस्सा बन जाता है। यदि अनुकूल वातावरण मिलता रहे तो वह संस्कार रूपी कर्म मजबूत होता रहता है और एक निश्चित समय पर स्वयं ही जागने लगता है और बार-बार हमारे सामने आने लगता है। अतः जब तक जीवन (कर्म) है और जब तक मन विकसित है तब तक विचारों का आना या चिंतन करना कैसे बंद हो सकता है?

इसके अतिरिक्त हमारा कर्म व्यक्तिगत कर्म नहीं है, हमारा विचार व्यक्तिगत विचार नहीं है। हमारे कर्म और हमारे विचार विश्व-कर्म (यूनिवर्सल कर्म) और विश्व-विचार (यूनिवर्सल आइडिया) से प्रभावित होते हैं। विश्व या ब्रह्माण्ड की जो नियति है, हमारे कर्म और विचारों की नियति उससे अलग कैसे हो सकती है? अतः यदि हम कर्म और विचार से अलग हटना चाहते हैं तो हमें विश्व कर्म और विश्व-विचार से बाहर छलांग लगानी होगी और इसी विश्व में रहते हुए क्या विश्व-कर्म और विश्व-विचार से बाहर छलांग लगाई जा सकती है?

पथ्वी के अन्दर एक निश्चित ताकत है, एनर्जी है। लेकिन जब यह ताकत समाप्त हो जाएगी तो यहां का जीवन समाप्त हो जाएगा। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है। यह पथ्वी का विश्व-कर्म है। अतः ज्यों-ज्यों पथ्वी की ताकत चूकती चली जाएगी, इसके घूमने की गति और इसके आकार में भी परिवर्तन आता चला जाएगा। पानी, पशु, पक्षी, वनस्पति और मानव का जीवन व सोच भी उसी कर्मवश बदलते चले जाएंगे। इसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड की भी एक नियति है, ब्रह्माण्ड-कर्म है जो पथ्वी के विश्व-कर्म को भी प्रभावित करता है और वातावरण का कोई भी कर्म या घटना व्यक्तिगत कर्म और व्यक्तिगत विचार को अवश्य प्रभावित करते हैं। अतः क्या मनुष्य ब्रह्मण्ड-कर्म और ब्रह्मण्ड-विचार से बाहर छलांग लगा सकता है? यदि ऐसा सम्भव है तो व्यक्ति विचार धारण करने से अवश्य बच सकता है लेकिन यह भी सम्भव प्रतीत नहीं होता है।

विश्व और व्यक्तिगत कर्म के परस्पर संबंध के बारे में श्री अरविन्द कहते हैं - "Fundamentally, the meaning of Karma is that all existence is the working of a universal Energy, a process and an action and building of things by that action, an unbuilding too, but as a step to further building, - that all is a continuous chain in which every one link is bound indissolubly to the past infinity of numberless links, and the whole governed by fixed relations, by a fixed association of cause and effect, present action the result of past action as future action will be the result of present action, all cause a working of energy and all effect too a working of energy -----that this is the universal law and nothing in the world can, being of and in our world, escape from its governing incidence. वह कहते हैं कि हर एक व्यक्ति विश्व-कानून से बंधा हुआ है जिसका सिद्धांत कारण और कार्य है। जो कुछ यहां बना हुआ है या बनने वाला है या होने वाला है, सभी कुछ एक लगातार होने वाली प्रक्रिया

का परिणाम है, एक ऐसी प्रक्रिया जो लगातार घूमने वाली एक जंजीर की तरह है जिसके साथ हम सभी अपने पुराने अनगिनत कर्मो और अनगिनत आपसी संबधों के कारण आपस में जुड़े हुए हैं जिसका परिणाम हम आज भुगत रहे हैं और जो कुछ वर्तमान में हो रहा है उसका परिणाम हमें भविष्य में भुगतना पड़ेगा। इस विश्व-कानून से कोई भी नहीं बच सकता है।'' इतने विशाल, दढ़ और अचूक विश्व-कानून में फंसा हुआ व्यक्ति क्या व्यतिगत मुक्ति प्राप्त कर सकता है? यदि करता भी है तो क्या इस तरह की मुक्ति का कोई औचित्य है जो इस विश्व-कानून की उपेक्षा करने के बाद प्राप्त होती है और परमात्मा की इस कानून सष्टि के साथ जिसका कोई संबंध नहीं है? इस साहित्य से पाठकों के मन में ऐसे अनेक प्रश्न उठ खड़े होंगे जिनका उत्तर पाठकों और जिज्ञासुओं को स्वयं ही ढूढना होगा, यही मेरा उद्देश्य भी है।

पहला प्रश्न था कि क्या मनुष्य बिना विचार किए रह सकता है? दूसरा प्रश्न यह था कि क्या वह रात के समय भी विचार करता है क्योंकि जीसस दूसरी पंक्ति में कह रहे हैं कि शाम से सुबह तक कोई विचार मत धारो।

Take no thought from the morning until the evening
and from the evening until the morning.

मनुष्य जो भी विचार जागत अवस्था में धारण करता है वह संस्कार बनकर चेतना रूपी चादर पर अंकित हो जाता है और अपने समय पर अपना असर दिखाने लगता है। बार-बार उस विचार और उससे संबंधित कर्म की पुनरावर्ति होने लगती है। जब वह संस्कार प्रगाढ़ हो जाता है तो वही स्वप्न बनकर भी अपना असर दिखाने लगता है। यदि हमने स्थूल रूप से मौन कर लिया है, बाहरी रूप से जुबान को ताला लगा लिया है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि हम मौन का पूर्णतया पालन करने में सफल हो गए हैं। यदि मौन का पालन करने में कोई जबरदस्ती है या बोलने की

इच्छा को जागत अवस्था में दबा रहे हैं तो वह इच्छा अर्धजागत या अर्धचेतन मन में चली जाती है और सोते हुए जब जागत मन सो जाता है तब उभर कर वह इच्छा स्वप्न के रूप में सामने प्रकट होने लगती है। इसके विपरीत यदि मौन से जागत अवस्था में आनन्द प्राप्त होता है और बोलते समय उस आनन्द में अवरोध महसूस होता है तो ऐसा मौन ही वास्तविक मौन है और सूक्ष्म में भी ऐसा मौन फलदायी होने लगता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति जागत अवस्था में भोजन का त्याग करता है तो वह स्वप्न में स्वादिष्ट भोजन अपने सम्मुख प्रकट कर लेता है। यदि कोई दिन भर प्यासा रहता है तो उसे सोते ही पानी पीने के स्वप्न दिखाई देने लगते हैं। यदि मनुष्य के अन्दर शांति उतरने लगती है तो वह स्वप्न में भी शांत रहता है। यदि जागत में भयभीत है तो स्वप्न में भी भयभीत है। अतः विचार शून्यता यदि जागत चेतना में अनुभव कर ली गई है तो वह स्वपनिल चेतना में भी प्रकट होनी चाहिये।

श्री अरविन्द की आध्यात्मिक सहयोगी श्री मां से एक जिज्ञासु ने प्रश्न किया - मां, कुछ लोग ऐसे हैं जो हर साल किसी विशेष बिमारी के कारण कष्ट भोगते हैं। यह बिमारी साल के एक विशेष समय पर आती है और उसी समय हर वर्ष इसकी पुनरावर्ति होती है, इसका क्या कारण है और इससे कैसे छुटकारा पाया जा सकता है?

मां कहती हैं कि इसके कई कारण हो सकते हैं। एक ज्योतिषी कहेगा कि यह सितारों की स्थिति का परिणाम है। एक डाक्टर कहेगा कि यह मौसम के प्रति संवेदनशीलता के कारण है। लेकिन इसका एक आध यात्मिक आधार भी है। जब कोई घटना एक से अधिक बार घट जाती है तो वह हमारे अन्दर एक आकार बना लेती है, फोरमेशन कर लेती है। जब भी वह समय आता है तो यह घटना कर्म बनकर बार-बार हमारे समक्ष आने लगती है। सबसे पहले यह घटना परिस्थितिवश एक छोटे से विचार के रूप में हमारे अन्दर प्रवेश करती है। आरम्भ में हम इसपर ध्यान नहीं देते हैं

और यह विचार हमारे अर्धचेतन मन में उतर जाता है। हम भूल जाते हैं लेकिन हमारा शरीर व अर्धचेतन मन उस यादगार को संजोकर रखता है। और वह घटना या द्वंद या बिमारी एक विशेष समय पर घटित होने लगते हैं। फिर अचानक एक दिन ध्यान देने पर हमें पता चलता है कि यह घटना हर वर्ष या हर महिने में इसी समय घटती है और तभी हम जागरूक होते हैं। यह घटना यदि धीरे-धीरे हमारे अचेतन मन में पहुंच जाती है तो ओर भी गंभीर रूप धारण कर लेती है और इससे छुटकारा पाना कठिन हो जाता है। यदि हम निराशावादी हैं तो यह घटना ओर भी अधिक तीव्रता के साथ धमकने लगती है और यदि आशावादी नजरिए के साथ पूर्ण जागरूक रहते हुए इसके कारण को ढूढ़ पाते हैं तो इससे निजात पाई जा सकती है। दवाईयों के द्वारा शारीरिक और मानसिक बिमारियों को हम दबा देते हैं जबकि वे सूक्ष्मरूप से हमारे अन्दर जीवित रहती हैं।

श्री अरविन्द कहते हैं कि अर्धचेतन में हमारे पिछले अनुभवों के संस्कार छिपे हुए पड़े रहते हैं जो वहां से स्वप्न में आ सकते हैं, साधारण नींद के अधिकतर स्वप्न अर्धचेतन संस्कारों की ही परीणति होते हैं -

The subconscient retains the impressions of all our past experiences of life and they can come up from there in dream forms: most dreams in ordinary sleep are formations made from subconscient impression. The habit of strong recurrence of the same thing in our physical consciousness, so that it is difficult to get rid of its habits, is largely due to a subconscient support. The subconscient is full of irrational habits.

वे कहते हैं कि ये सूक्ष्म संस्कार या अर्धचेतन इम्प्रेशन बार-बार हमारी शारीरिक चेतना में दष्टिगोचर होते हैं और अर्धचेतन की इस आदत से छुटकारा पाना अति कठिन है क्योंकि अर्धचेतन बेतुकी आदतों से भरा पड़ा है।

ओशो भी श्री अरविन्द और श्री मां के इस विचार से सहमत प्रतीत

होते हैं। वे कहते हैं कि अर्धचेतन या अचेतन मन में बैठे हुए किसी विचार या बिमारी को बाहर निकालने के लिए हिप्नोटिजम एक प्रभावी तरीका हो सकता है। इस विधि के द्वारा असाध्य रोगों को ठीक किया जा सकता है और इसका प्रयोग आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भी किया जा सकता है।

जीसस भी इसी अर्धचेतन चेतना में विचार शून्यता को अनुभव करने के लिए जोर देते हैं और कहते हैं कि शाम से सुबह तक अर्थात् स्वप्न में भी कोई विचार धारण मत करो। वे आगे कहते हैं -

Take no thought from the morning until the evening
and from the evening until the morning,
for what you shall put on.

अब जीसस विचार शून्यता को ओर भी अर्थपूर्ण बना देते हैं । मनुष्य को स्वयं के अन्दर आने के लिए प्रेरित कर रहे हैं संसार में रहते हुए बाहरी संसार और सांसारिक व्यवहार से अछूता कैसे रहा जाए यह हमें बता रहे हैं। क्योंकि जब तक व्यक्ति बाहरी संसार से जुड़ा हुआ है, तब तक वह विचार और उसके प्रभाव (कर्म) से बाहर नहीं जा सकता है और तब तक उसकी आंतरिक यात्रा भी आरम्भ नहीं हो सकती है। जीसस कहते हैं -

for what you shall put on

अर्थात् आप जो भी प्रयत्न डालते हैं, जो भी विचार करते हैं या जो भी कार्य करते हैं स्वयं को उससे अछूता रखो, उसके प्रभाव को शोषित मत करो, उसके बारे में कोई भी विचार धारण मत करो। ताकि दिन के समय और रात के समय भी उसका प्रभाव हमारी चेतना को प्रभावित न कर सके। स्वप्न में भी हम उस प्रयत्न के प्रभाव से प्रभावित न हो सकें। यदि उसके प्रभाव ने हमारे अन्दर कोई निवास स्थल बना लिया है, किसी केन्द्र का निर्माण कर लिया है तो वह बार-बार कार्य बनकर हमारे समक्ष आता रहेगा

और जब तक हम मन के इन बाहरी केन्द्रों के प्रभाव से मुक्त नहीं हो जाते हैं तब तक चेतना के अन्तरतम केन्द्र को बींध पाना असम्भव है, जीसस, नानक या मुहम्मद की चेतना का साक्षात्कार कर पाना असम्भव है।

हर कार्य या विचार के प्रभाव से कैसे बाहर निकला जा सकता है? विचार शून्यता के अनुभव में कैसे जीया जा सकता है? जब इस कार्य और कारण पर आधारित विश्व-कानून में बंधे हुए हैं तो फिर इस विश्व-कानून की परिधि को कैसे लांघा जा सकता है? कार्य और कारण को आधार बनाकर जब यह कालचक्र घूम रहा है तो इस काल चक्र से बाहर कैसे कूदा जा सकता है? यदि ये बातें सम्भव हैं तो व्यक्ति की व्यक्तिगत मुक्ति सम्भव हो सकती है लेकिन वह फिर भी विश्व-चेतना का अटूट अंग है इसलिए जब तक विश्व-चेतना की मुक्ति नहीं हो जाती है क्या तब तक एक व्यक्ति वास्तविक और पूर्ण रूप से मुक्त हो सकता है? और यदि विश्व-चेतना ने स्वयं को गति में रखने के लिए, नित नयी ताजगी को धारण करने के लिए बंधन और मुक्ति का स्वयं ही चुनाव किया है तो बंधन और मुक्ति के प्रश्न का क्या कोई औचित्य है?

शक्ति या उर्जा तभी तक ताजगी में रह सकती है जब तक वह अपनी गति में रहती है, एक सरिता की तरह बहती रहती है उसका रूकना या एक स्थान पर खड़ा हो जाना उर्जा के अन्दर सड़न पैदा करता है। वह नित-नयी ताजगी के साथ बहती है तभी तक तो साधक परमात्मा को नित -नए अनुभव में जी पाता है और उसमें व्याप्त अपार सम्भावनाओं को टटोल पाता है। वह नित - नयी ताजगी के साथ बहती है तभी तक तो सांसारिक लीला रूचिकर लग सकती है, वरना पल के लिए भी यहां रह पाना संभव न हो पाता। स्पष्ट है कि गति में रहना और एक समय पर गतिहीन हो जाना इस परम शक्ति का अपना स्वभाव है। सैल्फ विल है तो फिर स्वयं परमात्मा की इस स्वेच्छा से बाहर कैसे जाया जा सकता है? हम परम शक्ति का अटूट अंग हैं इसलिए जो इच्छा या स्वभाव इस शक्ति का है

वही स्वभाव हमारा भी है। इस तथ्य से नकारा नहीं जा सकता है। अतः हमारा कर्तव्य यही है कि हमें मुक्ति और बंधन के विचार को छोड़कर परमात्मा की स्वेच्छा (गोड-विल) में शामिल हो जाना चाहिए। जो कुछ हो रहा है उसकी मर्जी से हो रहा है, हम तो मात्र उसका एक यंत्र हैं। हम परमात्मा की इच्छा पूर्ति में किसी काम आ रहे हैं यही हमारा सौभाग्य है और नियति भी।

यदि ऐसा हम स्वीकार कर पाते हैं तो तब हम किसी भी स्वयंजनित प्रयत्न से बच सकते हैं, अहंकार से बच सकते हैं, उसके प्रभाव से बच सकते हैं। कालचक्र में व्यवहार करते हुए कालचक्र के प्रभाव से मुक्त हो सकते हैं। विचार में रहते हुए विचार के प्रभाव से बच सकते हैं। कोई भी कार्य करते हुए कर्ताभाव से मुक्त हो सकते हैं। यही जीसस का आशय है कि हम जो भी प्रयत्न डालें, चाहे वह विचार के रूप में है या कार्य के रूप में, वह प्रयत्न हमारे अन्दर स्वयं का कोई केन्द्र ना बना सके, किसी अहंकार को जन्म न दे सके। हम विभाजित होकर न जीएं बल्कि एक पूर्ण ताकत का यंत्र होते हुए पूर्ण ताकत के रूप में स्वयं को जान सकें और व्यवहार कर सकें।

बुद्ध निर्मन अवस्था को प्राप्त कर गए हैं, जीसस भी निर्मन अवस्था को प्राप्त कर गए हैं, लेकिन दोनों मार्ग अलग हैं। बुद्ध तत्वों की खोजबीन अर्थात् तत्व-विवेचन से निर्मन अवस्था तक पहुंचे हैं, गहन चिंतन मनन के द्वारा पूर्ण निर्णय की स्थिति में पहुंचे हैं। उनका मुख्य हथियार विश्वास है जो बुद्धि की निर्णयात्मक अवस्था से प्राप्त होता है। बुद्ध का मार्ग स्वयं पर केन्द्रित है जबकि जीसस का मार्ग स्वयं पर केन्द्रित नहीं है, इस सष्टि के स्वामी ईश्वर पर केन्द्रित हैं। इसलिए जीसस का मुख्य हथियार समर्पण है। वे अपने दुश्मन को भी आखं बंद करके समर्पण कर देते हैं यह जानकारी होते हुए भी कि वह व्यक्ति धोखा दे रहा है। जीसस कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति तुम्हें बहकाकर एक कोस ले जाता है तो उसके साथ दो कोस तक चले जाओ, ऐसा करने से उसको उसका फल मिल चुका है और

तुम्हें तुम्हारा फल मिल चुका है। वे कहते हैं कि यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो उसके सामने दूसरा गाल भी कर दो क्योंकि उसे इसका फल मिल चुका और तुम्हें तुम्हारा फल मिल चुका। इसलिए जीसस का मुख्य हथियार श्रद्धा है।

बुद्ध के मार्ग में मनुष्य अकेला होकर चलता है तो जीसस के मार्ग में अस्तित्व की उंगली पकड़कर चलता है। बुद्ध मार्ग में वह प्रौढ़ होकर चलता है तो जीसस मार्ग में बच्चा बनकर खेलता हुआ चलता है। बुद्ध मार्ग ज्ञान मार्ग है तो जीसस मार्ग भक्ति मार्ग है। ज्ञान मार्ग प्रेम से खाली है तो भक्ति मार्ग प्रेम की ही अभिव्यक्ति है। यदि प्रेम है तो समर्पण है, श्रद्धा है, विश्वास है और यदि मार्ग प्रेमविहिन है तो वह इन गुणों से या तो खाली है या उसमें इन गुणों की न्यूनता है। ज्ञान व्यक्ति को विचार में डालता है जबकि प्रेम चिंतन का विषय ही नहीं है। इसलिए विचार शून्यता में जाने के लिए प्रेम से उपयुक्त और असरदार साधन दूसरा नहीं है।

बुद्ध धर्म में इष्ट नहीं है इसलिए वह प्रेम से खाली है क्योंकि प्रेम करने के लिए इष्ट का होना जरूरी है। उपनिषद में इष्ट के होते हुए भी प्रेम साधना का केन्द्र नहीं है। उपनिषद विशुद्ध ज्ञान का विषय है। जीसस ने प्रेम के माध्यम से मनुष्य को परमात्मा के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया है लेकिन जीसस दर्शन में ईश्वर के अद्वैत अनुभव की कमी है। क्योंकि अद्वैतवाद् में उतरने के लिए ईसाई धर्म को जीसस के साकार रूप को लांघकर जाना होगा, उनके निराकार रूप को आत्मसात करना होगा जो ईसाई धर्म में सम्भव नहीं है। चर्च की व्यवस्था के रहते हुए सम्भव नहीं है।

ईसा मसीह से लगभग 600 वर्ष बाद इस्लाम धर्म का उदय हुआ। सूफी संतों ने इस्लाम धर्म को मजबूत आधार प्रदान किया। अद्वैतवाद और नादब्रह्म(कलमा-इलाही) का जो ज्ञान उपनिषद ने वर्णन किया था उसी को सूफी संतों ने एक बार फिर अपने अनुभव का आधार बनाया। मुख्य अंतर यह था कि उपनिषद ने इस अनुभव की प्राप्ति के लिए प्राणायाम को

साधन बनाया तो सूफी संतों ने भक्ति को मुख्य आधार बनाया। इसी सूफी परम्परा में पन्द्रहवीं शताब्दी में कबीर साहब आए जिन्होंने प्रेम और भक्ति को आधार बनाकर इस उपनिषद ज्ञान को जन-साधारण तक पहुंचाया। उन्होंने इस ज्ञान के प्रचार के लिए बहुत ही सरल और अलहड़ भाषा का प्रयोग किया।

मन की उछलकूद से बाहर निकलने के लिए कबीर साहब ने प्रेम को वाहन बनाया और परमात्मा तक पहुंचने वाले मार्ग को सुरत-शब्द योग का नाम दिया। सुरत आत्मा का नाम है और शब्द परमात्मा का अर्थात् आत्मा परमात्मा के योग को ही सुरत-शब्द योग कहा जाता है। इसी सुरत -शब्द योग को राधास्वामी पंथ में राधास्वामी योग कहा जाता है। राधा आत्मा को कहते हैं और स्वामी परमात्मा को। यह मार्ग पूरी तरह से अनहद नाद पर आधारित मार्ग है और प्रेम-भक्ति इस मार्ग की जान है।

बौद्ध धर्म प्रेम विहीन मार्ग है, ईसाई धर्म प्रेम करने का मार्ग है लेकिन यह प्रेम भक्ति की चरम सीमा तक नहीं पहुंच सका है क्योंकि यह मार्ग अभ्यास पर व ध्यान पर आधारित मार्ग नहीं है। अभ्यास पर आधारित मार्ग ही प्रेम को भक्ति में परिवर्तित कर सकता है, भक्ति की पराकाष्ठा तक पहुंच सकता है। यह भक्ति की शक्ति ही है जिसके कारण साधक सर्वस्व अर्पण कर सकता है, स्वयं की पूर्ण आहुति दे सकता है। हर समय अपने इष्ट के साथ योग में रह सकता है। लेकिन ईसाई धर्म में प्रेम प्रार्थना तक ही सिमट कर रह गया है। इसलिए यह धर्म प्रेम का मार्ग होते हुए भी भावनात्मक मन से ऊपर नहीं उठ सका है। भक्ति मार्ग नहीं बन सका है। पूर्ण श्रद्धा और पूर्ण समर्पण की कला से वाकिफ नहीं हो सका है। इसलिए आत्मा के भेद से वंचित रह गया है।

प्रेम भक्ति में तभी परिवर्तित हो सकता है जब साधक अपने इष्ट या सद्गुरू के आलोकित रूप या रेडियंट फार्म के दर्शन कर लेता है जिससे सारी सष्टि का जन्म हुआ है। जीसस के उस लोगोस (वर्ड) रूप के दर्शन

कर लेता है जो इस वहद ब्रह्माण्ड का आदि स्रोत है और अनादि जीसस तक पहुंचाने का माध्यम है। जब हम जीसस के उस रूप का अनुभव कर लेते हैं तभी हम आत्मिक रूप से जीसस की चेतना में विलीन हो सकते हैं, उनके रूप में समा सकते हैं और उन्हीं का रूप बन सकते हैं तथा पूर्ण अद्वैत का अनुभव कर सकते हैं। इससे पहले पूर्ण समर्पण नहीं हो सकता है, प्रेम की फ्लावरिंग नहीं हो सकती है, पूर्ण श्रद्धा फलित नहीं हो सकती है। जब तक प्रभू का रेडियंट व लोगोस रूप प्रकट नहीं हुआ है तब तक आत्मिक समर्पण नहीं हो सकता है क्योंकि आत्मा परमात्मा के इसी रेडियंट रूप की एक चिंगारी है, उसके लोगोस रूप का एक टूटा हुआ अधसुना संगीत है। और जब तक आत्मिक समर्पण नहीं है तब तक शारीरिक और मानसिक समर्पण अधूरा है चाहे उसके लिए कितना ही बड़ा त्याग क्यों न करें। ऐसी स्थिति में प्रार्थना पूर्ण कैसे हो सकती है जब वह प्रार्थना अधूरे समर्पण के साथ की गई हो, आत्मा और ईश्वर के अधूरे योग के साथ की गई हो?

कुछ लोग ऐसे है जो मन को स्थिर करने के लिए शारीरिक तपस्या करते हैं, दूसरे वे हैं जो प्राण (प्राणायाम) को वाहन बनाते हैं, तीसरे वे हैं जो मन को मन (भावनात्मक मन या विरक्त मन) के द्वारा ही स्थिर करने का प्रयास करते हैं और चौथे वे हैं जो प्रेम और भक्ति के द्वारा मन को स्थिर करते हैं। इनमें अन्तिम तरीका सबसे कारगर है क्योंकि प्रेम (भावनात्मक प्रेम नहीं) आत्मा का गुण है जो व्यक्ति को सीधे ही आत्मा के साथ जोड़ देता है। जब इष्ट या सद्गुरू का प्रेम जागत होता है तो वह ख्याल में पूरी तरह से छा जाता है और बिखरी हुई वति को पल में एकाग्र करने की क्षमता रखता है। प्रेम जब पूर्ण अभिव्यक्ति पाता है तब वह कोई विचार नहीं बल्कि विचारातीत आनंद का रूप बन जाता है। स्वयं प्रेमी (इष्ट) का ही रूप बन जाता है। प्रेम में उतरने के लिए न किसी विद्या की जरूरत है न किसी यम-नियम और ज्ञान की आवश्यकता है। कबीर साहब

कहते हैं -

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
अढ़ाई आखर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होय।।

जब एक बार सद्गुरू के प्रेम का तीर लग जाता है तब प्रेमी दिन-रात अपने इष्ट के प्रेम में इतना डूब जाता है कि लोग उसे पागल कहने लग जाते हैं। जब यह रोग बढ़ जाता है तो परिवार वाले वैद्य को बुलाकर उसका इलाज करवाते हैं। मीरा अपनी विरह की कथा इस प्रकार कहती हैं-

बाबल वैद्य बुलाइंया रे, पकड़ दिखाई म्हारी बांह।
वैद्य अनाड़ी मर्म न जानी, करक कलेजे मांह ।।

जब प्रेम जागता है तो वह सारे पुराने संस्कारों को उखाड़ फैंकता है। प्रेमी तो अपने इष्ट के प्यार में इतना पागल हो जाता है कि उसे विचार करने की फुरसत ही कहां रहती है। किसी ने मस्त सूफी फकीर को चेतावनी देते हुए कहा कि दीन के प्यार में इतना मत डूबो कि दुनियां की खबर ही न रहे। उस फकीर ने जवाब दिया कि दुनियां के बारे में सोचने की फुरसत ही किसे है। सूफी भाषा में ऐसे प्रेम को फनाह कहा गया है जिसमें प्रेमी जलकर अपने इष्ट में समा जाता है। प्रेमी और इष्ट के रूप में कोई फर्क नहीं रह जाता है ।

प्रेमी को दुनियां की कोई चाहत नहीं रह जाती है। सीता माता ने हनुमान की सेवा से खुश होकर उसे मोतियों की एक माला पुरस्कार में दी। हनुमान उस माला की एक-एक मणि को तोड़ने लगे और तोड़-तोड़ कर फैंकते रहे। सीता माता देख रही थी। अपनी माला का अपमान होते देख कर हनुमान को डाटने लगी कि तू मूर्ख है जो इतनी कीमती माला को तोड़ रहा है। हनुमान ने कहा कि हे माता, जब इस माला के किसी भी मणि में मेरे स्वामी श्रीराम का रूप नहीं है तो यह माला मेरे किस काम की है? अतः प्रेम मन को स्थिर करने के लिए सबसे उचित जरिया है। मेरे सद्गुरू

कहते थे -

मुश्किल है मन का डाटना,पल पल लेत उड़ारी।
सहजा है मन का डाटना, जब सतगुरू बने मल्लारी।।

जब सद्गुरू के साथ प्रेम डोर बंध जाती है तो मन अपने आप ही ठहर जाता है, इसके लिए कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है। यह तभी हो पाता है जब प्रेम भक्ति में परिवर्तित हो जाता है और ऐसा तभी हो पाता है जब भक्त प्रभू के आलोकित रूप में समा जाता है। कहावत में आगे कहा गया है -

His disciples said:

When wilt thou be revealed to us
and when will we see thee?

जब ईसा मसीह कहते हैं कि जो भी कर्म करो उसके संबंध से कोई विचार धारण मत करो तब उनके शिष्य उनसे पूछने लगे कि हे प्रभू! हमें आपके दर्शन कब होंगे? कब हम आपके रूप के दीदार कर सकेंगें?

यदि बाहर के जीसस के दर्शन करने होते तो जीसस सामने ही खड़े हुए थे, यदि मेरी के पुत्र या सांसारिक जीसस के दर्शन करने होते तो वे शिष्यों के सामने खड़े थे लेकिन फिर भी शिष्य पूछ रहे हैं कि आपके दीदार हमें कब होंगे? स्पष्ट है कि अन्तर के जीसस के दर्शन हमारे अन्दर होंगे और वह खुली आंखों से नहीं हो सकते हैं। आंख बंद करने पर ही उनके दर्शन खुल सकते हैं। ध्यान में उतरने पर ही उनके दर्शन हो सकते हैं। चेतना की बाहरी दिवारों का भेदन करने के बाद ही उनकी अन्तरतम गुह्य चेतना में उतरा जा सकता है, उनकी गुफा के दरवाजे को खटखटाया जा सकता है। Ask, and it shall be given to you; seek, and ye shall find; knock, and it shall be opened unto you (Matt. 7:7, Luke 11:9) लेकिन जब गुफा तक पहुंचने का मार्ग ही आंखों से ओझल हो गया है तो दरवाजा कैसे खटखटाया जा सकता है?शिष्यों के प्रश्न का जवाब देते

हुए जीसस आगे कहते हैं -

Jesus said:

When you take off your clothing without being ashamed
and take your clothes and put them under your feet

जीसस कहते हैं, कि जितने कपड़े तुमने धारण किए हुए हैं उन्हें उतार फैंको। मनुष्य के ऊपर प्याज की तरह परतें चढ़ी हुई हैं। इन परतों के कारण उसका वास्तविक और सनातन रूप छुप गया है। बचपन से लेकर आज तक हम इन कपड़ों की परत को बढ़ाते ही जा रहे हैं। बच्चे के पैदा होते ही उसके ऊपर पोतड़ों की परतें चढ़ानी शुरू कर देते हैं। उसके बचाव में लग जाते हैं। फिर हम उसके ऊपर अपने विचारों और संस्कारों की परतें चढ़ाने लगते हैं। उसे हिन्दू या मुसलमान बना देते हैं जो वह नहीं हैं। असली परतें विचारों की परतें हैं । जन्म के समय बच्चा न हिन्दू है न ईसाई और न ही सिक्ख है, यह मनुष्य ही है जो उसे इन पोतड़ों से लाद देता है। हिन्दू होना एक विचार ही है, मुसलमान या यहुदी होना भी एक विचार ही है और कुछ नहीं है। इन्हीं विचारों की परतों ने मनुष्य से उसकी मनुष्यता को छीन लिया है। उसे स्वयं से ही पराया बना दिया गया है। इसीलिए जीसस कह रहे हैं कि कोई भी विचार धारण मत करो क्योंकि असली परत विचार की ही परत है।

जब बुद्धि के परदे पर कोई विचार चढ़ जाता है तो हमारे ऊपर और हमारे चारों ओर उस विचार का प्रभाव दिखाई देने लगता है। हम अपना एक संसार बनाने लगते हैं। अपने विचारों से रचना खड़ी करने लगते हैं। जो परत बुद्धि के परदे पर चढ़ा दी गई थी अब वह परत बाहर भी दष्टिगोचर होने लगी है। हमारे खान-पान, आचार-व्यवहार और व्यापार में भी उसका असर दिखाई देने लगता है।

आज से लगभग पंद्रह सौ वर्ष पहले कोई व्यक्ति मुसलमान नहीं था, दो हजार वर्ष पहले कोई ईसाई नहीं था, छः सौ वर्ष पहले कोई सिक्ख नहीं

था। इसी प्रकार हिन्दू धर्म और दूसरे सभी धर्मो के बारे में भी सत्य है। यह मनुष्य ही है जिसने इन पोतड़ों को ओढ़ लिया है, धारण कर लिया है। जहर बाहर नहीं है। जहर बुद्धि के अन्दर है। विचार की यह परत ही है जो मानवता के लिए जहर बन गई है। इन्हीं परतों को हमें उतारना है।

When you take off your clothing without being ashmed

जीसस कहते हैं कि जब तुम इन पोतड़ों को बिना किसी शर्म के, बिना किसी हिचकिचाहट के उतार दोगे तभी मेरे दर्शन कर सकते हो। हिचकिचाहट या अधूरे मन से किया गया कोई भी कार्य अधूरा ही रहता है। किसी कार्य को करने में शर्म महसूस करना भी एक परदा है जो विचार या कार्य की शक्ति को दो हिस्सों में बांट देता है। हिचकिचाहट कमजोरी पैदा करती है इसलिए जो कार्य किया जाए वह पूर्ण मानसिक एकता से किया जाए वरना उसके करने में लाभ की बजाय हानि होने की संभावना अधिक होती है। एक विचार रूपी परदे को उतार फैंकने के लिए दूसरे विचार अर्थात् हिचकिचाहट रूपी परदे को ओढ़ना पहले वाले लबादे का भार बढ़ाने जैसी बात है।

तैत्तिरीय उपनिषद में ब्रह्मानन्दवल्ली के प्रथम अनुवाक् में ब्रह्म और पंचतत्वों के क्रमिक विकास की चर्चा करते हुए कहा गया है कि आत्मा के ऊपर पांच परदे हैं, कोष हैं जिनका भेदन करना आवश्यक है। सर्वप्रथम तो अन्नमय कोष या अन्नमय शरीर है जो मां के गर्भ से जन्म लेता है और अन्न द्वारा विकसित होता है तथा पंच महाभूतों (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पथ्वी) से बना हुआ होता है। दूसरा शरीर प्राणमय शरीर है जो पांच प्राणों (पान, अपान, समान, व्यान, उदान) से मिलकर बना है। तीसरा शरीर मनोमय शरीर है जो पांच इन्द्रियों व मन से मिलकर बना हुआ है। चौथा शरीर विज्ञानमय कोष है जो बुद्धि और अहंकार से निर्मित है। पंचम शरीर आनंदमय कोष है जो चित्त द्वारा निर्मित होता है। इन पांचों शरीरों के अतिरिक्त शुद्ध आत्मतत्व है जो ज्ञान ज्योतिस्वरूप परब्रह्म हैं।

उपनिषद ने बुद्धि और अहंकार के अतिरिक्त ओर भी परदे बताए हैं जो आत्मा के प्रकाश को ढक रहे हैं जो मनुष्य को आत्मा और परब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होने देते हैं। यहां तक कि आनंद भी जो कोई विचार नहीं है, आत्मा के ऊपर परदा है उसका भेदन भी आवश्यक है। आत्मा एक जलते हुए लैम्प की तरह है जिसमें ऊपर पांच वस्त्र लपेट दिए गए हैं और ये वस्त्र उस लैम्प के प्रकाश को बाहर आने से रोक रहे हैं। ज्यों-ज्यों ये वस्त्र उतरते जाएंगें, आत्मा रूपी लैंप का प्रकाश भी बढ़ता चला जाएगा। आत्मा के पूर्ण प्रकाश को प्रकट करने के लिए इन पांच वस्त्र या शरीरों का उतरना अत्यंत आवश्यक है। अतः उपनिषद ने आत्मा के परदों का विश्लेषण ओर भी बारीकी से किया है।

जीसस आगे कहते हैं -

and take your clothes and put them under your feet
as the little children and tread on them-

जिन कपड़ों को हमने अपने ऊपर लादा हुआ है उन्हें उतारो और अपने पैरों तले इस प्रकार रोंद डालो जैसे एक छोटा बच्चा अपने कपड़ों को उतार कर पैरों तले कुचलता है। कौन से कपड़े उतारें? यही पहचान कर पाना तो कठिन है। हर व्यक्ति स्वयं को ठीक मान रहा है। धर्म के लिए लड़ रहा है तो वह समझ रहा है कि उसका यही कर्तव्य है। जेहाद के लिए तैयारी कर रहा है तो उसके दिमाग में यह बिठा दिया गया है कि यह खुदा का हुक्म है। धन या कोई अन्य लालच देकर धर्म परिर्वतन करवा रहा है तो यह समझ रहा है कि वह प्रभु ईसा मसीह की सेवा कर रहा है। कोई व्यक्ति राजनीति कर रहा है चाहे वह धोखे और स्वार्थ की राजनीति कर रहा है, वह समझता है कि वह देश की सच्ची सेवा कर रहा है और हर रोज बहुत से लोगों के काम आता है। उसे अपना धोखा और स्वार्थ दिखाई ही नहीं दे रहे हैं। जिन कपड़ों को हमने ओढ़ लिया है, जिन संस्कारों को हमने अपना वस्त्र बना लिया है अब वही लिबास हमें सुख देने लगा है, हम

उस लिबास का परित्याग नहीं कर सकते हैं। हम उन कपड़ों की पहचान नहीं कर पाते हैं जो आत्मिक उन्नति के लिए गैर जरूरी हैं, जो आत्मा को अधोमुखी बना रहे हैं। जिस लिबास को पहनकर, जिन विचारों को धारण करके हमने अपना सारा व्यापार खड़ा किया है अब उस व्यापार को हम कैसे बरबाद कर सकते हैं?

संत कहते हैं कि तुमने अपना महल बालू रेत पर खड़ा किया है जिसकी दिवारें ताश के पत्तों की तरह हैं, तुमने अपना व्यापार घाटी में स्थापित किया है जो कभी भी बह जाएगा। हम उनकी ऐसी बातों को नहीं सुन रहे हैं। आत्मा का व्यापार नहीं कर रहे हैं, स्वयं को लुटाने का व्यापार नहीं कर रहे हैं। उस व्यापार में प्रेम रूपी महाधन का निवेश नहीं कर रहे हैं। दौलत का निवेश कर रहे हैं, नफरत और द्वेष का निवेश कर रहे हैं, ईर्ष्या और धोखे की आहुति दे रहे हैं फिर ऐसे व्यापार का परिणाम क्या होगा? ऐसे यज्ञ से कौन से फल की प्राप्ति होगी? ऐसे बीज से किस पेड़ की स्थापना होगी? जैसा बीज बोया जाएगा वैसा ही पेड़ अस्तित्व में आएगा और उससे उसी प्रकार का फल प्राप्त होगा।

ओशो कहते हैं कि तुमने अपना सारा व्यापार नदी के पुल पर स्थापित कर लिया है जो मात्र आने जाने का रास्ता है, स्थायी निवास स्थान नहीं। यह संसार भी एक पुल है जिसके ऊपर से होकर आत्मा को गुजर जाना है लेकिन हम इसे अपना स्थायी धाम समझ रहे हैं। यह जीवन चेतना के विकास का मात्र एक पड़ाव है और हम इसे ही अपनी मंजिल समझ कर खड़े हो गए हैं। मत्यु आत्मिक विकास का एक द्वार है जिसे हमने अपना दुश्मन समझ लिया है और हर पल उसके खौंफ में जी रहे हैं तथा उसके प्रभाव से बचने के लिए तरह-तरह के सुरक्षा प्रबंध कर रहे हैं। धोखे और दिखावे का जीवन जी रहे हैं। हम जो कुछ अन्दर से हैं वह बाहर से नहीं हैं। अपनी आत्मा के ऊपर हमने अनेक तरह के रंग-बिरंगे वस्त्र धारण कर लिए हैं।

जब तक इन वस्त्रों की पहचान नहीं होगी कि ये वस्त्र आत्मिक उन्नति में बाधक हैं तब तक हम इन्हें कैसे उठा पाएगें और कैसे पैरों तले कुचल पाएंगे? वह भी उस बच्चे की तरह जो अपने वस्त्रों से नफरत करता है जो नंगा रहना पसंद करता है। यदि उसे कोई वस्त्र जबरदस्ती पहना दिया जाए तो वह उसे उतार देना चहता है, उससे जल्दी से जल्दी छुटकारा पा लेना चाहता है। उतारने के बाद उन्हें उठाकर नहीं रखता है बल्कि अपने पैरों तले रोंद देता है, कुचल देता है। उन वस्त्रों के साथ उसे कोई सहानुभूति नहीं होती है। जीसस कहते हैं कि तुम भी अपने ऊपर लादे गए सस्कांरों के वस्त्रों को इस प्रकार उतरा कर फैंको कि दोबारा उन्हें धारण करने की इच्छा ही न रहे। आगे जीसस कहते हैं -

then shall you behold the Son of the Living one,
and you shall not fear.

कहते हैं कि जिन वस्त्रों से तुमने अपनी आत्मा को ढ़क लिया है उन वस्त्रों को जब उतार फैंकोगे तब तुम्हें जीवित ईश्वर के पुत्र के दर्शन होंगे और तुम भयमुक्त हो जाओगे। वे यह नहीं कह रहे हैं कि तुम्हें ईश्वर के पुत्र के दर्शन हो जाएंगे बल्कि यह कह रहे हैं कि तुम्हें जीवित ईश्वर के पुत्र के दर्शन होंगे। क्या मत ईश्वर भी होता है?

ईश्वर का जो रूप मानुष चोले में आपके सामने खड़ा है जीसस उसे ही जीवित ईश्वर का पुत्र कह रहे हैं। जो ईश्वर पंचतत्व चोले में आपके सामने आता है और आपकी अगुवाई करता है उसे ही वे जीवित ईश्वर का पुत्र कह रहे हैं। जो अवतार, पैगम्बर या गुरू इस संसार को छोड़कर चला गया है या देह रूप में हमारे सामने नहीं है उससे मनुष्य का उद्धार नहीं हो सकता है। मार्ग तभी तक जिन्दा मार्ग है जब तक कोई पूर्ण और कामिल सद्गुरू मार्ग दर्शन के लिए उपलब्ध है।

जब हम सद्गुरू (ईश्वर के पुत्र) के उस रूप को जो सबके अन्दर की धड़कन है अपने अन्तर में प्रकट कर लेते हैं तभी हम जीवित ईश्वर का

अनुभव कर सकते हैं। जब हम संसार को गति देने वाली जीवन शक्ति का अटूट हिस्सा बन जाते हैं तभी हम हमेशा के लिए जीवित रह सकते हैं और जब तक हम उस जीवन-स्रोत से अलग खड़े हुए हैं तब तक हमारी मत्यु निश्चित है और मौत का भय हमेशा हमें सताता रहेगा। जब तक हम शारीरिक चेतना का हिस्सा है या इन्द्रियों के सुख को ही सर्वोपरि सुख मानते हैं तब तक हम मरते रहेंगे और जन्म धारण करते रहेंगे लेकिन जब आत्मा के ऊपर के सारे शारीरिक या वैचारिक वस्त्र उतार देंगे तब आत्मा का होना प्रकट हो जाएगा। उसका नूर खिल जाएगा। सारा शरीर प्रकाश से भर जाएगा। आत्मा परमात्मा के नूर में मिलकर उसी का रूप बन जाएगी। जिस नूर से सारी सष्टि का जन्म होता है, जिस नूरी संगीत (लोगोस, नाद या कलमा) के अन्तर्ज्ञान से यह संसार अस्तित्व में आता है वह साधक के अन्तर में जीवन स्रोत बनकर बहने लगता है और उसे सारे दुःखों से मुक्त कर देता है। कबीर साहब कहते हैं -

तेरे घट के अन्दर नूर बाहर क्यूं भटकै भाई

नानक साहब ने कहा है -

इक नूर ते सब जग उपजा।

जीसस कहते हैं - I am the light of the world (John 9:5); मैं इस संसार को जीवन देने वाला प्रकाश हूं। If therefore thine eye be single, thy whole body shall be full of light (Matt. 6:22); यदि तुम्हारी एक आंख हो जाए तो तुम्हारा सारा शरीर ईश्वर के प्रकाश से भर जाएगा। जब दोनों आंखें मिलकर एक हो जाएंगी, तीसरा नेत्र खुल जाएगा तब आत्मा का प्रकाश सूदर्शन चक्र की तरह घूमता हुआ प्रकट हो जाएगा। सोई हुई कुण्डलीनी शक्ति जागकर सर्प की तरह फुफकारने लगेगी। भंवरे का संगीत ब्रह्मंडीय संगीत (लोगोस, वर्ड) का द्वार खोल देगा और साधक अमर हो जाएगा। भय मुक्त हो जायेगा।

सद्गुरू का व्यवहार

Jesus said to them:
If you fast
You will beget sin for yourselves;
if you pray
you will be condemned;
and if you give alms
you will do evil to your spirits.

And if you go into any land
and wander in the regions,
If they receive you,
eat what they set before you,
and heal the sick among them.

For what goes into your mouth
will not defile you,
but what comes out of your mouth,
that is what will defile you.

मसीह ने कहा:

अगर तुम उपवास करते हो
तो पाप की राह पर चलते हो,
अगर तुमने की प्रार्थना
तो लांछित हो जाओगे और सहोगे यातना,

अगर तुमने बांटी खैरात
तो अपनी ही रूहों की करोगे जिल्लत।

अगर तुम जाते हो परदेश
और भ्रमण करते हो वहां
अगर वे लोग करते हैं तुम्हारा सम्मान
और समझते हैं अपना मेहमान
तो जो भी मिले खाने को भोजन तुम्हें
दात मानकर उसे स्वीकार करो
और बीमारों की बीमारी हरो।

तुमने जो कुछ खाया
वह कलिष्ठ नहीं करेगा तुम्हें
परन्तु तुमने जो फरमाया
वह काफी है जो मलिन करेगा तुम्हें।

इस कहावत में ईसा मसीह परम्पराओं से हटकर बात कर रहे हैं। वे ऐसे तल पर खड़े हैं जो एक धार्मिक व्यक्ति की चेतना से मेल नहीं खाता है। जितने भी परम्परावादी धर्म हैं, उनकी धारणाओं और मान्यताओं को खण्डित कर रहे हैं। एक आस्तिक व्यक्ति उनकी इस विचार धारा से सहमत नहीं हो सकता है। वे कह रहे हैं कि यदि तुम उपवास करते हो तो पाप के अधिकारी बनते हो, यदि ईश्वर से प्रार्थना करते हो तो तुम्हारा व्यवहार निन्दा करने योग्य है और यदि तुम भूखे को भोजन देते हो या भिखारी को भीख बांटते हो तो अपनी ही आत्माओं के साथ दुराचार करते हो।

क्या कोई भी दयावान व आस्तिक मनुष्य मसीह की इन बातों से

सहमत हो सकता है? क्या कोई भी मनुष्य जो खुदा के मार्ग पर चलना चाहता है वह मसीह के इस उपदेश को उचित मान सकता है? क्या कोई भी आस्तिक मनुष्य परमात्मा से प्रार्थना किए बिना रह सकता है? यह सम्भव नहीं लगता है लेकिन जीसस ऐसा उपदेश क्यों कर रहे हैं? इसे समझने के लिए पहले हमें कुछ बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

हर व्यक्ति साकार रचना में वास करता है। सम्बन्धों की दुनियां में व्यवहार करता है और जब तक वह साकार रचना में रहता हुआ सम्बन्धों की डोर से बंधा हुआ है तब तक वह पक्षपात रहित कैसे हो सकता है? और जब तक व्यक्ति पक्षपातपूर्ण है तब तक वह ईश्वर की प्राप्ति नहीं कर सकता है।

साकार रचना में रहने वाला व्यक्ति अपनी पसंद के संसार की रचना करता है और उसी के साथ उसका व्यवहार होता है। वह अपने चारों ओर अपनी चाहत का घेरा बना लेता है। कोई छोटा घेरा बना लेता है तो कोई स्वयं को विशाल दायरों में कैद कर लेता है। समाज और सामाजिक वातावरण उसके मन को निर्मित करने में अहम भूमिका अदा करते हैं। लाखों साल के विकास की जो धरोहर है, वह विष के रूप में है या अमत के रूप में है वह व्यक्ति की सोच को आधार प्रदान करती है जिसे लेकर वह आगे बढ़ता है। यदि मनुष्य को आज भी जन्म होते ही जंगलों में छोड़ दिया जाये और वह किसी सभ्यता के सम्पर्क में न आए तो उसमें और लाखों साल पहले के आदि मानव में कोई विशेष अन्तर नहीं रहेगा।

ऐसा कई बार हुआ है जब किसी बच्चे को कोई जंगली जानवर उठा कर ले गया या कोई बच्चा समझ आने से पहले किसी घटनावश जंगली जानवरों के बीच पहुंच गया और वहीं पर उसका पालन पोषण हुआ। कई सालों तक वहां रहने के बाद जब उसे ढूंढ़कर वापिस लाया गया और उसके साथ दिमागी सम्पर्क साधने का प्रयत्न किया गया तो वह बच्चा ऐसा करने में सफल नहीं हो पाया और कुछ समय के बाद उसकी मत्यु हो गई।

लाखों साल के विकास की धरोहर, मनुष्य की उन्नति के पैमाने आगे बढ़ने में हमारी मदद करते हैं। चाहे यह धरोहर हमें विष के रूप में प्रतीत होती है या अमत के रूप में, यह हर हालत में हमारी सहायता करती है। इस ब्रह्माण्ड में कुछ भी ऐसा नहीं है जो अवांछनीय है या व्यर्थ का पदार्थ है। वेस्ट मैटीरियल है। जो उर्जा के एक तल का परिणाम है, एक स्तर का बाई-प्रोडक्ट है वही दूसरे तल या स्तर पर उपयोगी होता है, दूसरे तल की उन्नति में सहायक होता है। जो वस्तु या द्रव्य एक तल पर विषकारी है वही दूसरे स्तर पर गुणकारी है, अमत प्रदान करने वाली संजीवनी है। वस्तु या उर्जा जब एक सिस्टम में अवांछनीय हो जाती है तो वह वहां से दूर धकेल दी जाती है और दूसरे स्तर पर स्वीकार कर ली जाती है। दूसरे सिस्टम का अंग और मददगार बन जाती है। यही उर्जा के संरक्षण का सिद्धांत है। महान वैज्ञानिक आइनस्टाइन कहते हैं कि उर्जा को न तो पैदा किया जा सकता है और न ही नष्ट किया जा सकता है यह केवल एक रूप से दूसरे रूप में बदलती रहती है।

इस रचना का हर तल विरोधी तल पर खड़ा हुआ है। प्रकाश के साथ अंधकार, जन्म के साथ मत्यु, सुख के साथ दुःख आपस में हाथ मिलाए खड़े हुए हैं और मनुष्य को संघर्ष करने के लिए मजबूर कर रहे हैं ताकि वह विकास की सीढ़ियां चढ़ता रहे और कभी भी जीवन-चक्र को विराम न लगे ताकि नित नयी ताजगी का विसर्जन हो और हर जीव अपने हालात व वातावरण में टिक सके। खुश रह सके।

जब कोई वस्तु एक स्थान पर अवांछनीय हो जाती है या अनचाही हो जाती है तो प्रकति उस वस्तु को प्यार से या मार से उस स्थान से हटाने का प्रबंध कर देती है। यह स्वयं ही चलता रहता है इसमें किसी के प्रति कोई पक्षपात नहीं है। यह कुदरत का कानून है और इस कानून से चाहे व्यक्ति संत है या कुसंत है, कोई भी बच नहीं सकता है। जो इस कानून का प्रतिक्रमण करने का प्रयत्न करता है उसे देर-सवेर प्रकति की

मार सहनी पड़ती है। यह कानून स्वयं परमात्मा है और सारी प्रकति इस कानून का अंग-प्रत्यंग है। जो सबसे ज्यादा योग्य होता है उसी को वस्तु मिलती है और जो कमजोर होता है या योग्य नहीं होता है वह उस वस्तु को प्राप्त करने से वंचित रह जाता है। महान वैज्ञानिक डार्विन इसे ''स्ट्रगल फार द सरवाईवल'' और ''सरवाईवल आफ द फिटेस्ट'' के सिद्धांतों के नाम से पुकारते हैं अर्थात् किसी भी जीव को जीने के लिए संघर्ष करना पड़ता है और उसे ही जीने का अधिकार मिलता है जो सबसे मजबूत है, श्रेष्ठ है, ताकतवर है। अध्यात्मवेता इसे भाग्य कहते हैं, परमात्मा की मर्जी या विधि का विधान कहकर पुकारते हैं।

अब तक दो बातें स्पष्ट हुई हैं। एक यह कि यहां कुछ भी व्यर्थ पदार्थ नहीं है, वेस्ट मैटर नहीं है, जो कुछ भी है वह या तो उपयोगी है या रचना के कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिये उसकी आवश्यकता हैं। विशाल दष्टि कहती है कि यहां कुछ भी निन्दनीय नहीं है, निन्दनीय है तो वह प्रयास है जिसके द्वारा हम कुदरत के इस बहाव को रोकने का प्रयत्न करते हैं, इसे बदलने की कोशिश करते हैं। यदि ऐसा है तो फिर हम किसके लिए उपवास करें और किसके लिये प्रार्थना करें। ऐसा कोई भी प्रयास ईश्वर के कार्य में बाधाजनक होगा और उसका परिणाम हमें भुगतना ही होगा।

दूसरी बात यह कि परमात्मा एक कानून है जो किसी के साथ भी पक्षपात नहीं करता है। लेकिन दुनियां का कानून असंवेदनशील होता है, उस पर किसी की प्रार्थना या किसी के रोने-धोने या व्रत-उपवास करने का कोई असर नहीं होता है। इस कानून के सामने दिल नाम की कोई चीज नहीं होती है क्योंकि वह दिल की बात नहीं सुनता है। वह बुद्धि, विचार या ज्ञान की पैदायश होता है। वहां बुद्धि के मोहरों की बिसात पर फैसले लिए जाते हैं जो जितना चालाक होता है वह उतना ही मजबूत होता है। दुनियां का कानून कठोर होता है जहां दया और प्रार्थना के लिए कोई स्थान

नहीं होता है। यदि न्यायाधीश ने किसी के प्रति दया भाव दिखाया तो वह कानून का अपराधी हो जाता है उसे लिखे हुए कानून का सख्ती से पालन करना पड़ता है और इसी की शपथ लेनी पड़ती है।

संसार के कानून में शरीर से किया गया पाप ही पाप माना जाता है जबकि परमात्मा के कानून में मन से या विचार से किया गया दुष्कत्य भी पाप माना जाता है। जहां भी चेतना की एकाग्रता है, आत्मा की शक्ति संचित है, ईश्वर के कानून में वही श्रेष्ठ है, ताकतवर है और इस श्रेष्ठता का कारण ईमानदारी और सच्चाई से की गई प्रार्थना है। प्रार्थना तभी सच्ची हो सकती है यदि वह दिल की गहराई से निकलकर आए। मन व बुद्धि का बिखराव और अपवित्रता प्रार्थना को खण्डित करते हैं। इसलिए ईश्वर का कानून और संसार का कानून दोनों एक दूसरे का विरोधी पक्ष हैं, अपोजिट एन्ड हैं।

दुनियां का कानून कहता है कि दिल अंधा होता है वह देख नहीं सकता है, वह पक्षपातपूर्ण हो सकता है जबकि बुद्धि देख सकती है, लाभ और हानि को माप सकती है जबकि प्रार्थना में केवल दिल से ही उतरा जा सकता है वहां बुद्धि की मापतोल नहीं है। वहां विचार और चिंतन की पहुंच नहीं है। क्योंकि प्रार्थना कोई विचार नहीं है वह तो केवल एक खिंचाव है जो बस होता है। परमात्मा की मूर्ति के सामने खड़े होकर दो शब्द बोलना या नमाज अदा करते समय खुदा की बंदगी करना यह प्रार्थना नहीं है बल्कि गणित है, नापतोल कर किया गया परमात्मा के साथ एक व्यवहार है। खुदा को यह बताने की एक कोशिश है कि देख तुझे मेरी आवश्यकताओं का ज्ञान नहीं है, मैं बताता हूं अपनी जरूरतें। यह व्यवहार तो परमात्मा को अज्ञानी सिद्ध करता है। उपवास में भी यही प्रार्थना छिपी हुई है और दान-दक्षिणा या खैरात देने में भी हमारा स्वार्थ स्पष्ट दिखाई देता है। इसलिए हम किसके लिए उपवास रखें, कैसी प्रार्थना करें और किसे खैरात बांटे? खैरात बांटने वाला कौन है, लेने वाला कौन है, देने वाला लेने वाले पर अहसान

कर रहा है या लेने वाला देने वाले पर कपा कर रहा है, इसका फैसला करना भी कठिन है।

जीसस प्रार्थना के विपरीत नहीं है क्योंकि सारा इसाई धर्म प्रार्थना पर केन्द्रित है। जीसस के सामने अपने गुनाहों की माफी मांगना इस धर्म का मुख्य अंग है। जीसस प्रार्थना के विरोध में नहीं खड़े हैं बल्कि वे उस प्रार्थना के विपरीत हैं जिसे हम गल्त कारण से करते हैं, अपने स्वार्थ के लिए करते हैं। जीसस 'सरमन आन द माऊंट' में कहते हैं --''और जब तुम प्रार्थना करते हो तो तुम पाखंडियों की तरह मत करना क्योंकि वे सायनागाग (प्रार्थना सभा) और रास्ते के कोनों-कोनों में खड़े रहकर प्रार्थना करते हैं ताकि लोग उन्हें देख लें, तुम्हें कहता हूं, उन्हें उनका पुरस्कार मिल जाता है। लेकिन तुम जब प्रार्थना करते हो बंद कमरें में छिप जाओ और जब तुम दरवाजा बंद कर दोगे तब एकान्त में तुम्हारे पिता से प्रार्थना करना और तुम्हारा पिता जो एकान्त में देख लेता है, तुम्हें खुलेआम पुरस्कार देगा। और जब तुम प्रार्थना करोगे तब बार बार मत दोहराओ जैसा कि अधार्मिक लोग करते हैं, वे सोचते हैं कि उनकी ऐसी व्यर्थ बातें सुनी जाएंगी। तुम उनके जैसे मत बनो क्योंकि तुम्हारा पिता जानता है कि तुम्हें किस चीज की जरूरत है, इससे पहले कि तुम उससे पूछो (Methew,6)"

स्पष्ट है कि जीसस प्रार्थना के विपरीत नहीं हैं लेकिन वह उस पाखण्ड के विपरीत हैं जो हम दूसरे लोगों को दिखाने के लिये करते हैं, मान बड़ाई के लिये करते हैं। लेकिन फिर भी वे अंत में दोहराते हैं कि तुम्हारा पिता जानता है कि तुम्हें किस चीज की जरूरत है, इससे पहले कि तुम उससे पूछो।

Jesus said to them:

If you fast
you will beget sin for yourselves;
if you pray

you will be condemned;

and if you give alms

you will do evil to your spirits

जीसस एक तरफ कहते हैं कि प्रार्थना की जा सकती है लेकिन यहां कह रहे हैं कि प्रार्थना करना अपराध है, व्रत करना पाप है, और भीख देना या धर्मदान देना अपनी आत्माओं के साथ अन्याय है। तो ऐसा वे किसके लिए उपदेश कर रहे हैं? क्योंकि एक साधारण व्यक्ति जो अपने इष्ट-देवता से या परमात्मा से प्रेम करता है वह उससे प्रार्थना किए बिना कैसे रह सकता है, उससे प्यार किए बिना उसे कैसे संतुष्टि मिल सकती है? इसाई धर्म प्रेम व समर्पण पर आधारित धर्म है और प्रेम-मार्ग में प्रार्थना न हो, यह सम्भव नहीं है।

साधारण व्यक्ति शब्दों से प्रार्थना करता है। वह सारा दिन अपना कार्य करता है, अपना व्यापार संभालता है। फिर सुबह और शाम वह अपने इष्ट के सामने खड़ा हो जाता है और अपने हाथ बांध कर शब्दों के द्वारा अपना आभार प्रकट करता है, कभी-कभी भोजन का त्याग करता है ताकि उसका देवता उससे खुश रहे और कभी कोई कठिनाई उसके मार्ग को न रोक सके और शांति से जीवन की गाड़ी आगे बढ़ती रहे। वह कुछ विशेष मौकों पर दान-दक्षिणा भी देता है ताकि उसकी दौलत पाक व पवित्र हो सके। गल्त या सही तरीके से कमाई गई दौलत में से कुछ हिस्सा वह अपने ईश्वर के चरणों में अर्पित करना चाहता है जिससे मन की उत्थल-पुथल शांत हो सके। यदि दौलत गल्त तरीके से कमाई गई है तो उसके लिये दान-दक्षिणा देना और भूखों को भोजन करवाना या अपने गुरू को धन के रूप में सेवा अर्पण करना ओर भी जरूरी हो जाता है। ऐसा करना उसके मन को शांति प्रदान करना है। ईसा मसीह कहते हैं कि ऐसी प्रार्थना करना पाखण्ड है, अपने आपको धोखा देना है। ऐसे कारणों के लिए उपवास करना अपने पाप कर्मो की फसल को बढ़ाना है। पाप व धोखे से कमाई

गई दौलत में से दान-दक्षिणा देना, दान लेने वाले का अहित करना है। इसीलिये जीसस चेतावनी दे रहे हैं कि यदि तुमने किसी को खैरात दी या दान दिया तो तुम अपनी आत्माओं की बुराई करोगे। वे आत्माएं जिन्हें तुम अपनी मानकर खैरात बांट रहे हो और ऐसी कमाई का हिस्सा उनके मन व शरीर में डालकर उन्हें अपवित्र बना रहे हो।

हम गुनाह करते हैं और चर्च, मन्दिर, मस्जिद या गुरूद्वारे में जाकर भगवान से अपने गुनाहों की माफी मांग लेते हैं। वहां का पादरी, मौला, ग्रन्थि या पुरोहित हमें यह सर्टिफिकेट दे देता है कि जाओ तुमने प्रार्थना कर ली है, भगवान के मंदिर में धन अर्पित कर दिया है अब तुम्हारे सारे गुनाह माफ हो गए हैं। घर आकर हम निश्चिंत हो जाते हैं और नए गुनाहों का जाल बुनने लगते हैं और फिर गुनाहों की माफी मांग लेते हैं। परमात्मा के नाम पर कितना अच्छा, कितना कारगर और कितना आसान है यह व्यापार।

जो व्यक्ति शरीर से भारी है, अमीर है या अधिक खाना खाता है वह उपवास के द्वारा भगवान को खुश करना चाहता है इसीलिये जैन धर्म में उपवास की विशेष महता है। जैन-सम्प्रदाय में लम्बे-२ मौन और उपवास रखे गए हैं। जिसके पास अधिक धन है, जो व्यापार करता है वह सबसे अधिक बोलता है क्योंकि उसकी बातों को सुनने वाले होते हैं, उसकी बात का महत्व होता है। इसलिए उसके लिये मौन महत्वपूर्ण हो जाता है ताकि उसकी दिनचर्या में एक संतुलन आ सके। जब व्यक्ति बोलता बोलता थक जाता है तो वह अपनी उर्जा को आराम देना चाहता है ताकि ओर अधिक बोल सके। जब वह खाते-खाते थक जाता है तो वह अपने इष्ट के नाम पर उपवास करता है ताकि उसका भगवान खुश हो जाए और उसे अधिक खाने के दुष्प्रभावों से बचा सके।

गरीब व्यक्ति उपवास नहीं रखता है वह खुशी के मौके पर अधिक से अधिक स्वादिष्ट पकवान खाता है, नाचता है, गाता है और वर्षो से दबी हुई आत्मा के मौन को बाहर निकालता है। लेकिन अमीर व्यक्ति

का तरीका इसके बिल्कुल विपरीत है। इसलिए अमीर लोगों को भगवान महावीर का रास्ता रास आया। उनके लिए अमावस्या महत्वपूर्ण हो गई। गरीबों के लिए पूर्णमासी महत्वपूर्ण है ताकि वे रात को भी काम कर सकें और रोजी-रोटी का भली भांति प्रबंध हो सके। इसीलिए बुद्ध, नानक, कबीर गरीबों को रास आए। संत मत में पूर्णमासी की विशेष महता है।

हम गुनाह करते हैं, फिर प्रार्थना करते हैं और अपने गुनाहों से माफ हो जाते हैं। दूसरे का हक खाते हैं, उपवास करते हैं और पाक हो जाते हैं। पाप की कमाई करते हैं, उसमें से एक छोटा सा हिस्सा गरीबों में बंटवाते हैं या अपने भगवान के चरणों में चढ़ाते हैं और मन में उठने वाली अशांति से मुक्ति पा लेते हैं। जीसस कहते हैं कि ऐसा करने से आत्मा के गुनाहों की फसल बढ़ती है क्योंकि ऐसा करने से पश्चाताप के लिए कोई जगह नहीं रहती है। और जब तक अपने गुनाहों के लिए पश्चाताप नहीं है तब तक गुनाहों का मैल साफ नहीं होता है। आखों से गुनाहों के मैल की अश्रुधारा नहीं फूटती है तब तक गुनाह माफ नहीं हो सकता है। वे कहते हैं - Repent and the kingdom of heaven is at hand; पश्चाताप करो और परमात्मा का साम्राज्य तुम्हारे पास है।

पश्चाताप में की गई प्रार्थना स्वाभाविक प्रार्थना होती है। उसके लिए व्यक्ति को किसी पूजा स्थल पर जाने की आवश्यकता नहीं होती है। व्यक्ति को जब अपने गुनाह का ज्ञान होता है, उसी समय उसका हृदय पीड़ा से भर जाता है, उसका रोम-रोम दुःख का अनुभव करता है। आंखों से आंसू बहने लगते हैं। यह दुःख, ये आंसू स्वाभाविक होते हैं इनके लिए किसी तैयारी की आवश्यकता नहीं हैं किसी पूजा-स्थल पर नहीं जाना पड़ता है बल्कि पूजा-स्थल ऐसी प्रार्थना के लिए बाधक है। जब व्यक्ति ऐसी हालत का सामना करता है तो वह एकान्त में जाना चाहता है। एकान्त में जाने के बाद ही पश्चाताप की पीड़ा कम होती है, गुनाहों का मैल आंसुओं के द्वारा बाहर निकल पाता है। तभी तो जीसस कह रहे हैं

--''लेकिन जब तुम प्रार्थना करते हो, बंद कमरे में छिप जाओ और जब तुम दरवाजा बंद कर दोगे तब एकान्त में तुम्हारे पिता से प्रार्थना करना और तुम्हारा पिता जो एकान्त में तुम्हें देख लेता है, तुम्हें खुलेआम पुरस्कार देगा।''

गहराई में प्रार्थना के क्या अर्थ हैं? उपवास के क्या मायने हैं? और दान-दक्षिणा कैसे उपयोगी हो सकती है, जिससे हमारे लिए परमात्मा के साम्राज्य का द्वार खुल जाये?

भूखे व्यक्ति के लिए भूख प्रार्थना है। कामी के लिए कामिनी प्रार्थना है, लोभी के लिए धन की चाह प्रार्थना है, थके हुए व्यक्ति के लिए नींद प्रार्थना है। जब अंग -२ किसी चीज की मांग करता है तो वह मांग प्रार्थना बन जाती है। प्रार्थना बुद्धि की पैदायश नहीं है। बुद्धि के द्वारा जनित प्रार्थना केवल एक चालाकी हो सकती है। परमात्मा के साथ खेला गया एक खेल हो सकता है, एक व्यापारी का व्यापार हो सकता है लेकिन एक भक्त की भक्ति नहीं जहां वह श्रद्धा बन जाती है और उसका अंग-अंग परमात्मा के प्यार में जलने लगता है, प्रेम में तड़फने लगता है। दिन-रात विरह की अग्नि में जलता हुआ विरही बस एक दर्श की कामना करता है, यह है वास्तविक प्रार्थना जिसमें साधक का रोम-रोम शामिल हो जाता है। यही है वास्तविक उपवास जिसमें भूख और प्यास प्रीतम की वेदी पर बली चढ़ जाते हैं। यदि ऐसी प्रार्थना है तो वह सिद्ध प्रार्थना है, यदि ऐसा उपवास है तो वह प्रीतम के यज्ञ में पूर्ण आहुति है।

उपवास का अर्थ है स्वयं के निकट वास करना अर्थात् आत्मा में ठहर जाना। उपवास भोजन छोड़ने का नाम नहीं है बल्कि अपनी बाहर की तरफ फैलती हुई वतियों पर संयम करना है। इन्द्रियों के अन्दर से नष्ट होती हुई ताकत को संग्रह करना है ताकि वह मानसिक एकाग्रता में सहायता कर सके। मन की बिखरी हुई वति पर अंकुश लगा सके और व्यक्ति का विचार ताकत बनकर स्थिर हो सके, बुद्धि की कुशाग्रता और विवेक शक्ति बढ़ सके। व्यक्ति का चिंतन और उसके निर्णय दूरगामी हों,

स्पष्ट और दूरदष्टि के परिचायक हों। उसके फैसले आलोकित हों, प्रकाश और ज्ञानमार्ग की तरफ ले जाने वाले हों।

भोजन छोड़ना तो इस संयम का मात्र एक हिस्सा है। शास्त्र कहता है कि अन्न भी बह्म है जिसे अन्नमय ब्रह्म कहा गया है और भोजन का त्याग करना इस अन्नमय ब्रह्म का अपमान हो सकता है। हमारा मन, हमारा शरीर और यहां तक कि यह सारा दष्टिगोचर ब्रह्माण्ड इसी अन्नमयब्रह्म की उत्पत्ति है। अन्नमय ब्रह्म ही इस विराट जगत के रूप में स्थित है जिसके अन्दर प्राणमय ब्रह्म जीवन धारा बनकर इसे जीवन प्रदान कर रहा है।

हमारे शरीर का हर एक अंग भोजन का ही अंश है, अन्न से ही इसकी उत्पत्ति और बढ़वार होती है। इसलिए भोजन त्याग करने से इसमें विकति पैदा हो सकती है। प्राकतिक चिकित्सा पद्धति कहती है कि यदि एक दिन का उपवास किया जाए तो नियमित भोजन की मात्रा पर आने के लिये व्यक्ति को तीन दिन का समय लगता है तभी उपवास का लाभ होता है वरना लाभ की बजाय हानि होने की अधिक संभावना रहती है। यदि तरीके से उपवास किया जाए और शरीर से विजातीय पदार्थ को बाहर निकालने के लिये उपवास किया जाए तो ऐसा उपवास शरीर के लिए लाभदायक होता है। त्रुटिपूर्ण विधि से किया गया उपवास निश्चित रूप से हानिकारक हो सकता है। आंतों के अंदर का मैल सूखकर आंतों के अन्दर जमा हो सकता है जिसके दूरगामी परिणाम हो सकते हैं। उपवास रखते समय अधिक से अधिक जल का सेवन करना और पेट की सफाई रखना अति आवश्यक कहा गया है।

एक उपवास शरीर के लिए किया जाता है जो स्थूल व्यक्ति करते हैं। दूसरा उपवास मन के संयम के लिये किया जाता है जिसे साधु और तपस्वी लोग किया करते हैं। तीसरी तरह का उपवास वह है जिसमें किसी प्रकार के प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है उसे भक्त जन करते हैं, प्रेम और

भक्ति में यह स्वयं ही उपजता है। इसी प्रकार एक प्रार्थना वह है जो स्वार्थ के लिए की जाती है और दिनचर्या का केवल एक हिस्सा है। दूसरी प्रार्थना वह है जो ज्ञानी और तपस्वी लोग करते हैं। ये दोनों प्रार्थना शब्द और मंत्रों की मोहताज हैं लेकिन तीसरी प्रार्थना ऐसी प्रार्थना है जो शब्द और मंत्रों से पैदा नहीं होती बल्कि हृदय की धरोहर है जिसमें से मीठी मीठी अग्नि निकलती रहती है और प्रेमी भक्त उसकी अग्नि में जलता चला जाता है लेकिन आह नहीं करता। इस प्रार्थना में शरीर का रोम-रोम भागीदार होता है। तन की आहुति चढ़ती है और प्रेमी बिना शिकायत किए मदमस्त होकर स्वयं को अर्पित करता चला जाता है। इस अर्पण से उसे कोई दुःख या अहंकार नहीं होता है बल्कि वह अपार आनंद का अनुभव करता है। अर्पण की इस अनूठी कला से पैदा हुए सुख को शब्दों में बयान करना अति कठिन है। सूफी भाषा में इसे फनाह-फि-शेख, फनाह-फि-रसूल और फनाह-फि-अल्लाह कहा गया है। इस प्रार्थना में अंत में प्रार्थना करने वाला ही नहीं बचता है तो प्रार्थना कौन करे और किसकी प्रार्थना की जाए?

भिक्षा या धर्म-दान के विषय में जीसस कहते हैं -

If you give alms

you will do evil to your spirits.

यदि तुमने दान दिया तो तुम अपनी आत्माओं की क्षति करोगे। दान को भी तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है। द्रव्यदान, ज्ञानदान और प्रेमदान। स्थूलदान या द्रव्यदान में किसी पदार्थ या धन दौलत का दान किया जाता है। ज्ञानदान को महादान कहा गया है जिसमें ज्ञान का वितरण किया जाता है। सच्चा ज्ञान मनुष्य के दुःखों का निवारण करने में सक्षम है। समय की आवश्यकता अनुसार साधु-संत और ज्ञानी लोग इस ज्ञान के द्वारा समाज के लोगों की सहायता करते रहते हैं। लेकिन सबसे महान दान प्रेमदान है, यही परमदान है जिसमें व्यक्ति यदि आवश्यकता पड़े तो अपने प्रियतम या कर्तव्य के लिए स्वयं की भी बलिदानी कर देता

है। राजा हरिशचन्द्र ने सत्य की रक्षा के लिए अपनी पत्नी और कलेजे के टुकड़े पुत्र को भी बेच दिया। द्रव्यदान और ज्ञानदान हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में करता है लेकिन आवश्यक नहीं कि उसके पास प्रेमदान करने की क्षमता भी हो। बहुत से लोगों ने मानव मूल्यों की रक्षा के लिए अपनी जान की बाजी लगा कर मानवता के लिए प्रेमदान किया है। प्रेमदान दायरों में रहकर सम्भव नहीं है। इसमें हर सीमा को लांघना पड़ सकता है इसलिये प्रेमदान का मार्ग महाकठिन है। साधारण व्यक्ति इस मार्ग पर चलने में समर्थ नहीं है। यह जाति-पाति, धर्म सम्पद्राय, रंग-रूप, भाषा-देश आदि बातों का वरण नहीं करता है। इसमें पक्षपातरहित होकर अपनी आत्मा की आवाज पर चलना पड़ता है। परम्परावादी धर्म पर नहीं आत्मवादी धर्म पर चलना पड़ता है।

कहते हैं कि एक दिन हजरत अबदुल्ला बिन मुबारक ने स्वप्न में देखा कि दो फरिश्ते आसमान से उतरे। उनमें से एक ने पूछा कि इस साल कितने आदमी हज के लिए आए। दूसरे ने कहा कि छः लाख । पहले ने पूछा कि कितनों का हज कबूल हुआ? दूसरे ने कहा कि किसी का भी नहीं। दमिश्क में अमुक नाम का एक मोची रहता है, यद्यपि वह हज पर नहीं गया मगर उसका हज कबूल हुआ। हजरत अबदुल्ला कहते हैं कि मैं बहुत घबराया कि इतना पैसा बरबाद किया और इतनी तकलीफें। क्या सब अकारथ गई? मैं दमिश्क जाकर उस मोची से मिला। उसने बताया कि उसने हज के लिए बीस हजार सिक्के जोड़े थे। हज के लिए सारी तैयारियां पूरी हो चुकी थी। जब वह चलने लगा तो अपने पड़ौसी के घर गया। उसने देखा कि उसके बच्चे भूख से बिलख रहे थे। अपने मन से कहा कि तुने अपने किए की सजा पाई। अल्लाह का शुक्र है कि मैंने तुझको अपने मकसद में कामयाब न होने दिया और तू स्वागत का लुत्फ और मजा न उठा सका। मैंने वह सारा पैसा उस गरीब परिवार को दे दिया। अब मैं मेहनत की कमाई करता हूँ और अपना पेट पालता हूं।

प्रेमदान में अपने स्वार्थो व अपनी परम्पराओं की कुर्बानी करनी पड़ सकती है। लेकिन परम्परावादी धर्म इसकी इजाजत नहीं देते हैं। केवल आत्मनिष्ठ व्यक्ति ही इस मार्ग का हकदार है। परम्परावादी धर्म इसे अपराध मानते हैं और इसके लिए सजा मुकरर करते हैं। परम्परावादी धर्म को न मानने के कारण ही जीसस को मौत की सजा दी गई। उनका कसूर इतना था कि उन्होंने ईश्वर से प्यार किया और लोगों को भी प्यार दिया। परम्परावादी धर्म का विरोध करने के कारण ही हजरत मुहम्मद को मक्का छोड़कर भागने के लिए मजबूर होना पड़ा क्योंकि उनके अन्दर खुदा की आयतें उतर रही थीं जो उस समय के धार्मिक समाज को मंजूर नहीं थीं। लेकिन उनके जाने के बाद जीसस व हजरत मुहम्मद को मानने वाले धर्म भी परम्पराओं में बंध गए और किसी भी नई सम्भावना को नकार दिया। जिसने भी अपनी आत्मा की आवाज सुनने की कोशिश की उसे ही कष्ट दिए गए और सजा दी गई। ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म में ही नहीं बल्कि सभी परम्परावादी धर्म आधुनिकता और किसी भी नए विचार का विरोध करते हैं। समय के चलते हुए चक्र की गति को रोकने का प्रयास करते हैं जो सम्भव नहीं है। यही कारण है कि हिंसा और आंतकवाद का जन्म होता है। धर्म-पुरोहित और एक वैज्ञानिक सोच रखने वाले धार्मिक व्यक्ति के बीच सतत् संघर्ष चलता रहता है क्योंकि किसी भी नएपन को स्वीकार करने से परम्परावादी धर्मो की परम्पराएं व धारणाएं ध्वस्त होती हैं और धर्म-पुरोहितों का व्यापार नष्ट होता है। जहां भी कट्टरवाद, साम्प्रदायकिता का सिर उठता है या धर्म-परिवर्तन करवाया जाता है वहीं पर परम्परावादी धर्म भोले-भाले लोगों की भावनाओं को भड़काते हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।

धार्मिक समाज को यही नयापन देने का प्रयत्न जीसस के लिए मौत का कारण बना और आज फिर हमने वही ढांचा तैयार कर लिया है। यदि जीसस फिर से हमारे बीच आकर कुरीतियों के खिलाफ बोले तो क्या

उन्हें इसकी इजाजत दी जाएगी? समय की आवश्यकता के अनुसार यदि वे धर्म की वर्तमान व्यवस्था में परिर्वतन लाना चाहें तो क्या वे ऐसा करने के लिए स्वतंत्र होंगे? ये प्रश्न केवल ईसाई धर्म के धर्मतंत्र से नहीं हैं बल्कि हर धर्म के रक्षकों से है जिन्होंने धर्म को निश्चित दायरों में बांध दिया है। उसके लिए सीमाएं तय कर दी गई हैं। आप इन सीमाओं से बाहर नहीं निकल सकते हैं। जबकि धार्मिक व्यक्ति की पहचान ही यह है कि वह किसी सीमा में नहीं बंधता, वह सीमाहीन होता है और असीम की तलाश करता है। उसकी बैठक अनहद में होती है। वह परमात्मा की हर संभावना को स्वीकार करता है। स्वयं को बंद नहीं करता बल्कि सबके लिए स्वयं को खुला रखता है।उसके निकट जाते ही शांति का अनुभव होने लगता है।

जीसस इस कहावत में एक सीमित व्यक्ति को इन्हीं सीमाओं से बाहर निकालना चाहते हैं। उसे विस्तत रूप में धार्मिक बनाना चाहते हैं ताकि वह प्रकाश के साथ-साथ अंधकार की पूर्णता को भी अंगीकार कर सके, उसकी अनिवार्यता को भी अनुभव कर सके। धर्म के साथ अधर्म की जरूरत को भी पहचान सके। इसलिये यह कहावत तथाकथित धार्मिक व्यक्तियों के साथ साथ उन व्यक्तियों के लिए विशेष है जो धर्म से ऊपर उठ चुके हैं, जिनका विचार साम्राज्य सम्पूर्ण अस्तित्व में फैला हुआ है और जहां एक अस्तित्व की उर्जा दूसरे अस्तित्व को सहारा दे रही है लेकिन फिर भी उन दोनों अस्तित्वों का आपसी व्यवहार एक दूसरे का विरोधी है। एक प्रकाश है तो दूसरा अंधकार, एक जीवन है तो दूसरा मत्यु, लेकिन दोनों ही आवश्यक हैं परमात्मा की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए।

जो व्यक्ति इस अनुभव में उतर गया है अब उसके लिए कोई भी प्रार्थना, कोई भी उपवास मायने नहीं रखते हैं। अब वह किसके लिये प्रार्थना करे? किसके लिए उपवास रखे? और किसे धर्म-दान या खैरात दे? यदि वह प्रकाश के लिए प्रार्थना करता है तो अंधकार के प्रति अन्याय है, यदि जीवन के लिए प्रार्थना करता है या उपवास करता है तो मत्यु का अपमान

होता है। और यदि मत्यु का अपमान हुआ तो आने वाले कल की सम्भावनाएं ही खत्म हो जाएंगी। कल के सूर्य का उदय होना कठिन होगा। प्रकति के नियम का विरोध होगा। यदि प्रकति में असंतुलन होगा तो हमें उसके कोप का भोजन होना होगा और हम खुदा की खुदाई के विरोध में खड़े हो जाएंगे। उसकी इच्छा को अवरूद्ध करने का जरिया बन जाएंगे। इसलिये जीसस का यह उपदेश साधारण व्यक्ति के लिये नहीं है बल्कि एक रहबर विशेष के लिए है, उसके लिए है जो लोगों की रहनुमाई करता है। मुर्शिद (गुरू) होने का दावा करता है। अब वह किसी के प्रति भी पक्षपाती नहीं हो सकता है। सद्गुरू के भाणे में जीता है। अब उसके लिए कोई भी प्रयत्न बाकी नहीं रहता है। जो परिस्थिति सामने पैदा हो जाती है उसी के अनुसार व्यवहार करता है। न तो होने की खुशी और न ही खोने का गम। उसके लिए घटनाएं स्वयं ही अपने समय पर खुलने लगती हैं। उसके सारे संस्कार जलकर राख हो चुके हैं। वह अल्लाह में फनाह (फनाह-फि-अल्लाह) हो चुका है। उसका इस दुनियां में होना केवल एक चिन्हमात्र है जिसके अन्दर से खुदा अपनी खुदाई को प्रकट करता है। संसार के लोगों को उसके अल्लाह में फनाह होने का पुरस्कार देता है।

इसीलिए जीसस कहते हैं कि यदि तुमने उपवास किया तो तुम अपने लिए पाप-कर्मो की फसल बढ़ाओगे, यदि तुमने प्रार्थना की तो तुम तिरस्कार पाओगे और यदि तुमने धर्मदान दिया तो तुम अपनी आत्माओं के साथ दुराचार करोगे। आगे कहा गया है:

And if you go into any land
and wander in the regions,
If they receive you,
eat what they set before you,
and heal the sick among them.

यदि तुम किसी जमीन पर जाते हो और वहां के इलाकों में घूमते हो, यदि वहां के लोग सम्मान के साथ तुम्हारी आवभगत करते हैं तो वे लोग जो भोजन तुम्हारे सामने रखें उसे आदर सहित ग्रहण करो और अस्वस्थ लोगों की बीमारी का हरण करो।

कहावत के इस अंश में कई सूक्ष्म संदेश छिपे हुए हैं। जीसस कहते हैं कि यदि तुम किसी जमीन पर जाते हो, इसका अर्थ है कि रहबर या गुरू को कहीं जाने की जरूरत नहीं है फिर भी यदि जाना पड़े तो उसे कहीं भटकने की जरूरत नहीं है, फिर भी यदि उसे उस स्थान पर भ्रमण या विहार करना पड़े तो उसे जो भी खाने को मिले आदरपूर्वक स्वीकार करे। यह भोजन उसके ऊपर ऋण होगा जिसके एवज में उसे लोगों को बिमारियों से मुक्ति देनी होगी। यदि वह इसमें सक्षम नहीं है, योग्य नहीं है तो वह उन लोगों के बीच में जाने का हकदार नहीं है। उसे उन लोगों की सेवा करनी होगी वरना उसकी आत्मा पाप कर्मो से कुलषित हो जाएगी। और इसके लिये उसे प्रार्थना भी नहीं करनी है। कितना कठिन है ऐसी कसौटी पर खरा उतरना।

जीसस ने इस कहावत में जगह-जगह इफ (यदि) शब्द का प्रयोग किया है। यदि का अर्थ है कि जीसस ऐसा करने से मना कर रहे हैं फिर भी यदि ऐसा करना पड़े तो वैसा होगा। सबसे पहले वे उपवास करने के लिए मना कर रहे हैं इसीलिए कह रहे हैं 'इफ यू फास्ट', फिर प्रार्थना करने के लिए मना कर रहे हैं इसलिए कह रहे हैं 'इफ यू परे', इसके बाद वे धर्मदान करने के लिए मना कर रहे हैं इसलिए कह रहे हैं कि यदि (इफ यू गिव अल्मस) धर्मदान या भीक्षा देनी पड़े तो इसका परिणाम यह होगा।

इस छन्द में कहते हैं कि यदि तुम्हें किसी दूसरे स्थान पर जाना पड़े अर्थात् एक रहबर को कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है, उसका अपने स्थान पर रहना ही उचित है क्योंकि सूर्य एकदेशीय होता हुआ ही सर्वदेशीय होता है। यदि सूर्य है तो उसकी किरणें अपने आप ही सब जगह अपना

घर कर लेंगी। यदि सूर्य ही नहीं है तो फिर भटकने की क्या आवश्यकता है उसे स्वयं को सूर्यरूप होने का अर्थात् सर्वसमर्थ के अनुभव में समाने का अभ्यास करते रहना चाहिए। और यह तभी हो सकता है जब साधन करने वाला सर्वसमर्थ में फनाह हो जाता है। क्या सर्वसमर्थ को कहीं जाने की आवश्यकता है? यदि सायूज्य मुक्ति प्राप्त करनी है तो व्यक्ति की हर क्रिया और उसके अन्दर जन्म लेने वाला हर विचार परमात्मा की इच्छा की अभिव्यक्ति बन जाते हैं। वे कहते हैं कि फिर भी यदि परमात्मा की मौज के अधीन उसे कहीं जाना पड़ जाता है तो उसे जगह-जगह भटकने की आवश्यकता नहीं है। अलग-अलग स्थानों पर भटकना मन में भटकन पैदा करता है। आत्मा में किसी स्थान, किसी व्यक्ति के प्रति आसक्ति पैदा करता है जो एक साधू के लिए उचित नहीं है। इस भटकन में उसका सम्पर्क न जाने कैसे-कैसे व्यक्तियों के साथ होता है, न जाने कैसी पाप कर्म की कमाई से बना भोजन करना पड़ता है जिनके प्रभाव से वह बच नहीं सकता है क्योंकि साधू के चारों ओर ऐसा प्रभामण्डल बन जाता है जो सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति को बहुत शीघ्र प्रभावित करता है और उसके प्रभाव को शोषित भी अति शीघ्र करता है। उर्जा की गति कभी भी एक तरफा नहीं होती है। वह जितनी ऊपर की तरफ छलांग लगाती है उसके अन्दर उतनी ही गहराई में जाने की क्षमता भी होती है। एक स्वतंत्र कण (फ्री रेडिकल), स्वतंत्र रसायन या स्वतंत्र पदार्थ के अन्दर यदि अपनी उर्जा को दूसरे कण, रसायन या पदार्थ को समर्पित करने का गुण है तो उसके अन्दर दूसरे स्वतंत्र कण या रसायन की उर्जा को शोषित करने की भी अपार क्षमता है। एक मुक्त व्यक्ति का व्यवहार भी कुछ इसी प्रकार का होता है। नियम सब जगह एक ही तरह कार्य करता है। मेरे सद्गुरू परम् संत ताराचन्द जी महाराज कहते थे कि साधु यदि किसी गहस्थी के घर भोजन कर लेता है तो उसे उस दिन छः घंटे का अधिक ध्यान करना चाहिए। कबीर साहब कहते हैं -

गहस्थी का टुकड़ा बहुत करे उत्पात।
भजन करे तो उभरे नहीं तो पाड़े आंत।।

आगे जीसस कहते हैं -

If they receive you,
eat what they set before you,
and heal the sick among them

ऐसा हो सकता है कि वहां के लोग आपको रिसीव ही न करें, आपकी आवभगत ही न करना चाहें। यदि ऐसा है तो ऐसे स्थान पर आप अनचाहे मेहमान हैं और ऐसे स्थान पर नहीं जाना चाहिए। क्योंकि उस स्थान के लोग यदि आपके आने का स्वागत नहीं करते हैं तो उसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो यह कि वहां के सारे लोग राक्षस प्रवति के हैं और ऐसे लोगों के बीच रहना अति कठिन है, वे आपकी बात न सुन पाएंगें और आपको या तो वहां से निष्कासित कर देंगे या आपको हानि पहुंचाएगें। दूसरा कारण यह हो सकता है कि वह स्वयं में तप्त हों, संतुष्ट हों और आपकी उन्हें कोई आवश्यकता ही न हो वहां भी आपका अपेक्षित सम्मान न हो सकेगा। अतः आप वहां जाकर दोनों ही परिस्थितियों में प्रकति के कार्य में बाधा डालेंगे और उसका परिणाम आपको भुगतना होगा।

अब यदि आप अपने स्थान को छोड़कर दूर की भूमि पर चले गए हैं और यदि आप वहां के इलाकों में घूमने भी लगे हैं और यदि वहां के लोग आपके आने का स्वागत-सत्कार भी करते हैं तो आपके सामने सबसे पहली परिस्थिति यह है कि आप कैसा भोजन करें। क्योंकि अकसर आध्यात्मिक व्यक्ति सबसे अधिक चुनाव भोजन के संबंध में करता है। भोजन का चुनाव आत्मिक अनुभव में विशेष महत्व रखता है। इस अनुभव के लिए आप पाशविक भोजन नहीं कर सकते हैं, तामसिक वस्तुओं का चुनाव नहीं कर सकते हैं। यह भी सामान्य देखा गया है कि आत्मिक साधन करने वाले

व्यक्तियों को राजसिक या तामसिक वति का भोजन अपाच्य होता है, हजम नहीं हो पाता है और शरीर में बिमारी पैदा कर सकता है। लेकिन जीसस कह रहे हैं कि वहां के लोग जैसा भी भोजन आपके लिए परोसें उसे ही स्वीकार करना चाहिए। उन लोगों के ऊपर भार नहीं बनना चाहिए, उनके लिए कठिनाइयां नहीं बढ़ानी चाहिएं। और इसके बदले में आप वहां के लोगों की बीमारियों और समस्याओं का हरण करें।

यदि आपका प्रभामण्डल मजबूत है उसमें हर स्तर की उर्जा विद्यमान है तो जो भी न्यूनता उसमें प्रवेश करेगी वही तुष्ट होकर बाहर निकल पाएगी। जिस व्यक्ति के स्थूल, सूक्ष्म और कारण उर्जा के सारे चक्र खुले हुए हैं, जिसकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक मण्डलों की उर्जा की ओपनिंग हो गई है वह क्रियात्मक रूप में प्रकट हो गई है ऐसे व्यक्ति का आभामण्डल पूर्ण होता है उसमें शक्ति की हर तरह की उर्जा क्रियावान रहती है तथा चारों और विसर्जित होती रहती है। ऐसे व्यक्ति के निकट जो भी व्यक्ति आता है उसके अन्दर एक गुणात्मक परिवर्तन होने लगता है। ऐसा व्यक्ति मत समान व्यक्ति को भी उर्जावान बनाने में समर्थ होता है। इसलिए जीसस कहते हैं कि एक दरवेश में, एक रहबर में इतना सामार्थ्य होना चाहिए कि वह थके हुए व्यक्तियों में जान फूंक सकें, बीमार लोगों की बीमारी हर सके। वह एक सेवक की तरह व्यवहार करे, एक मास्टर की तरह नहीं, एक गुरू की तरह नहीं। ऐसा करते हुए वह लोगों के दिल में घर कर सकेगा, उनकी रहनुमाई कर सकेगा। वे लोग ऐसे व्यक्ति पर अपना विश्वास कर पांएगे और वह व्यक्ति इस पथ्वी पर परमात्मा के साम्राज्य का विस्तार करने में सहायक होगा। वह प्रभू का अधिक प्यार प्राप्त कर सकेगा। जीसस आगे क्या कहते हैं -

For what goes into your mouth
will not defile you,
but what comes out of your mouth,
that is what will defile you.

जो आप खाते हैं वह महत्वपूर्ण नहीं हैं बल्कि जो आप बोलते हैं वह अधिक महत्वपूर्ण है। एक स्वतंत्र मनुष्य और दूसरे जीवों में एक मुख्य अंतर यही है कि आपके पास बोलने की स्वतंत्रता है और आप अपने विचार सुदूर देशों तक पहुंचा सकते हैं। यह अधिकार सष्टि के दूसरे जीवों के पास नहीं है यदि है भी तो उसका क्रियात्मक पक्ष अधिक विस्तत नहीं है। हमने सुना है कि कुछ पक्षी या दूसरे जीव बोलकर अपना संदेश एक दूसरे तक पहुंचाते हैं लेकिन जुबान का विस्तत रूप मनुष्य को ही प्राप्त हुआ है इसके अदान-प्रदान से ही मनुष्य ने इतनी अधिक उन्नति की है। विचारों के विकास और जुबान की अभिव्यक्ति ने मनुष्य के ज्ञान को लगातार उन्नति प्रदान की है जिससे वह आकाश के नक्षत्रों को भी नापने लगा है जिन्हें पूर्व मनुष्य देवता मानकर उनकी पूजा करता था।

जो आप खाते हैं उसके दुष्प्रभाव से आप बच सकते हैं लेकिन आप मुख से जो शब्द निकालते हैं उनके प्रभाव से आप नहीं बच सकते हैं। आप जो बोलें वह अर्थपूर्ण हो। अपशब्द बोलना या अधिक बोलना आपको ही अपवित्र करेगा। हमारे शब्दों के अन्दर हमारा सारा व्यक्तित्व छिपा हुआ है जो यह बताता है कि हम क्या हैं, किस तरह के व्यक्ति हैं। हम जो कुछ अपने मुख से बाहर निकालेंगे वही हमारे चारों तरफ का वातावरण निर्मित करेगा। हमें एक पहचान देगा। यह पहचान एक पागल व्यक्ति की भी हो सकती है। एक पशु और एक हत्यारे की भी हो सकती है। यही पहचान आपके मुख से निकले एक एक शब्द को ईश्वर तुल्य बना सकती है। आपका बोलना किसी स्थान या किसी जाति-विशेष के भविष्य को निर्धारित कर सकता है। आप इतिहास के निर्माता हो सकते हैं। वाणी के महत्व को दर्शाते हुए कबीर साहब कहते हैं :

वाणी तो अनमोल है जो कोई जाने बोल।
हिए तराजु तोलकर फिर मुख बाहर खोल।।

शब्दों को हृदय रूपी तराजू से तोलकर ही मुख से बाहर निकालना चाहिए। वाणी से निकले हुए शब्द वशीकरण मंत्र होते हैं जो वैरी को भी

काबू में कर सकते हैं। कहा गया है --

ऐसी वाणी बोलिए सुख उपजे चारों ओर।
वशीकरण एक मंत्र है तू तजदे वचन कठोर।।

एक रहबर के लिए वाणी का संयम और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि उसके एक एक शब्द के साथ लोगों की भावनाएं जुड़ी रहती हैं। उनके कुछ अर्थ होते हैं। जीसस का आशय भी इस कहावत में ऐसा ही प्रतीत होता है।

शिष्य की पूर्णता

Jesus said:

The kingdom is like a shepherd
who had one hundred sheep.

One of them went astray,
which was the largest.

He left behind the ninety-nine,
he sought for the one
until he found it.

Having tired himself out,
he said to the sheep:
I love thee more than the ninety-nine.

मसीह ने कहाः

ईश्वर का साम्राज्य
एक चरवाहे की तरह है
जिसके पास सौ भेड़ें थी।

उनमें से एक रास्ता भटक गई ।
जो सबसे बड़ी थी वह पथभ्रष्ट हो गई।

निन्यानवे भेड़ों को पीछे छोड़,

चरवाहा उस भेड़ को ढूंढने निकल पड़ा,
जब तक वह नहीं मिली ढूंढता चला गया।

जब वह मिली तो चरवाहा थक चुका था,
थकान से चूर हो भेड़ से कहने लगा
मैं तुमसे सबसे अधिक प्यार करता हूं
निन्यानवें भेड़ों को तुम पर वार सकता हूं।

ईसा मसीह बार-बार स्वर्ग के साम्राज्य की बात करते हैं। ईसाई धर्म में कहा गया है कि एक दिन आएगा जब पथ्वी से शैतान का साम्राज्य समाप्त हो जायेगा। मनुष्य शैतान के पंजे से मुक्त हो जायेगा, उसके दुःखों का अंत हो जायेगा। जो मनुष्य अपने गुनाहों को कबूल करेगा, प्रभू के लिए सबसे बड़ी कुर्बानी देगा वह ईश्वर के साम्राज्य में सबसे अधिक सम्मान का अधिकारी होगा, उसे सबसे बड़ी पदवी से सम्मानित किया जायेगा (Luke 22:30)। जबकि जीसस के शब्द इस संदेश के विपरीत थे। उन्होंने कहा, ''जो सबसे पहले आएगा उसे सबसे बाद में स्थान दिया जायेगा और वह नौकर होकर सबकी सेवा करेगा। If anyone would be first, he must be last of all and servent of all (Mark 9: 35)"

जीसस द्वारा यह चेतावनी देने के बाद भी इस विचार ने लोगों की समाजिक चेतना को जगाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कहा गया कि अन्तिम निर्णय (एण्ड-टाइम एक्सपैक्टेशन या लास्ट जजमैंट) का दिन अति निकट है इसलिए सब लोगों को अपने गुनाह कबूल कर लेने चाहिएं और चर्च का सदस्य बन जाना चाहिए। इस विचार ने एक आंदोलन का रूप ले लिया और लोगों में इसाई धर्म अपनाने की एक होड़ सी लग गई। चर्च के अधिकारियों के पास अपार सम्पत्ति इकट्ठी होने लगी और राजा ने भी मजबूर होकर चर्च की प्रभूसत्ता को स्वीकार करना आरम्भ कर दिया।

उन्हें राज्यों की कार्य-परिषदों में भी शामिल किया जाने लगा और ऊंचे-ऊंचे ओहदों (पदवी) से नवाजा जाने लगा। चर्च ने स्वयं को प्रभू ईसा मसीह द्वारा स्थापित आध्यात्मिक- न्याय संस्था के रूप में स्थापित कर लिया और एक समय ऐसा आया जब पोप बोनिफिस अष्टम ने तेरह सौ दो ई. में स्वयं को संसार का सार्वभौमिक शासक घोषित कर दिया।

ईश्वर के साम्राज्य की स्थापना करने का विचार एक आंदोलन का रूप धारण कर चुका था। बड़े पैमाने पर धार्मिक समाज ने अंतिम निर्णय (कयामत का दिन) के लिए तैयारियां शुरू कर दी थी। लोगों में इस धारणा का प्रचार किया जा रहा था कि संसार का अंत बहुत ही निकट है। जीसस पुनः प्रकट होंगे और सबके गुनाहों का फैसला किया जायेगा। यह प्रचार किया गया कि संसार की आयु सात हजार वर्ष है। इस आधार पर गणना करके बताया गया कि रचना का कार्य कब से आरम्भ हुआ। यह बताने के लिए विभिन्न धार्मिक संस्थाओं या हस्तियों के द्वारा कैलेण्डर भी जारी किए गए। बिजेन्टाइन कैलेण्डर के अनुसार सष्टि का आरम्भ एक सितम्बर पच्चपन सौ नौ ईसा पूर्व को हुआ। मार्टिन लूथर के अनुसार उन्तालीस सौ साठ ईसा पूर्व में हुआ, जोसफ स्केलिजर (सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के फ्रांस के विद्वान) के अनुसार सैंतालिस सौ तेरह ई.पू.में और सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के ही आयरलैण्ड के जेम्स उस्सर के अनुसार तेईस अक्तूबर चार हजार चार ई.पू. हुआ।

सष्टि के जन्म की इस धारणा को उस समय आघात पहुंचा जब कोपरनिकस सिद्धांत (कापरनिकन थेरी आफ हैवनस) का उदय हुआ। कापरनिकस नक्षत्र विज्ञान, गणित, औषधि विज्ञान और अध्यात्मविद्या का प्रकाण्ड विद्वान होने के साथ-साथ पादरी के पद पर भी रहा। कापरनिकस से पहले यह माना जाता था कि पथ्वी इस ब्रह्माण्ड का केन्द्र है। पथ्वी एक स्थान पर स्थिर है और सारे नक्षत्र पथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। यह विचार अरस्तु के द्वारा प्रतिपादित किया गया था। आकाश में विद्यमान

नक्षत्र, चांद और सितारे दैविक शक्तियों के निवास स्थान माने जाते थे और उनकी पूजा की जाती थी। लेकिन कापरनिकस के आने के बाद यह धारणा निर्मूल हो गई। अब जो नया सिद्धान्त अस्तित्व में आया उसके अनुसार यह पाया गया कि पथ्वी स्वयं अपनी धूरी के चारों ओर धूमती है और एक वर्ष में सूर्य का एक चक्कर काटती है। कापरनिकस अपनी खोज को धार्मिक समाज के दबाव के कारण सार्वजनिक नहीं कर पाया। उनके एक शिष्य रैटिकस ने जर्मनी में उनका कार्य प्रकाशित किया। इससे सारे धार्मिक समाज में उत्थल-पुथल मच गई। कापरनिकस के इस कार्य को कैपलर और गैलिलियो ने आगे बढ़ाया जिसके कारण गैलिलियो को अपने जीवन के अंतिम आठ वर्ष कैद के अन्दर बिताने पड़े और उन्हें यातनाएं दी गई।

धर्म को जन्म देने वाले चले जाते हैं लेकिन यह हमेशा से होता आया है कि धर्म की स्थापना करने वाले व्यक्ति की मत्यु के बाद उस पर अधार्मिक लोगों का कब्जा होता आया है। यह कहावत सत्य प्रतीत होती है कि सत्य की खोज होने के बाद उस पर सबसे पहला अधिकार शैतान का होता है। धर्म के नाम पर जब अधार्मिकता और कट्टरपन का अधिकार हो जाता है तो ऐसे लोग सत्य और धर्म को अपने हाथों का खिलौना बनाकर उसके साथ खेलते हैं और जब कोई भी व्यक्ति इन अधार्मिक लोगों की तथाकथित धार्मिकता और पाखण्ड को तोड़ने का प्रयास करता है तो उसे कठोर यातनाएं दी जाती हैं, फांसी की सजा दी जाती है और जहर का प्याला पिलाया जाता है। यह अकेले ईसाई या यहुदी धर्म के लिए ही सत्य नहीं है बल्कि हर धर्म की नींव ऐसी घटनाओं के ऊपर टिकी हुई है। बल्कि कहा जाए तो दुनियां के सभी धर्मो में हिन्दू धर्म के अन्दर अधिक सहनशीलता रही है और इस धर्म के लोगों ने हर धर्म के विचार को सम्मान ही नहीं दिया बल्कि उसकी अच्छाइयों को समय-समय पर अपनाया भी है। हर व्यक्ति को धर्म की स्वतंत्रता रही है, अपने विचार प्रकट

करने की छूट रही है इसलिये हिन्दू धर्म किसी न किसी रूप में नई ऊंचाइयां लेकर हमेशा उजागर होता रहा है।

जब डार्विन ने 'द आरिजन आफ स्पिशीज' का सिद्धांत प्रस्तुत किया तो ईसाई धर्म को ओर भी बड़ा झटका लगा। इस सिद्धान्त ने ईश्वर के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह लगा दिया। धर्म को लोगों की अफीम कहा जाने लगा। कहा जाने लगा कि ईश्वर मात्र एक कल्पना है जो भावुक और डरपोक लोगों की खुराक है। इसका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। कार्ल मार्क्स के नास्तिक तर्को ने इसे ओर भी दिलचस्प और महत्वपूर्ण बना दिया।

वैज्ञानिक खोज और सामाजिक जागति ने ईश्वर के राज्य की स्थापना के मिशन को एक आघात पहुंचाया। लेकिन इससे पहले 'अंतिम दिन' या 'निर्णय के दिन' की तैयारियां पुरजोर से की जा रही थी। संसार में चारों ओर ईसाई धर्म के प्रचार के लिए ईसाई मिशनरीज भेजे जा रहे थे। इसी प्रक्रिया के तहत ये मिशनरी जहां भी जाते वहां के लोगों, उनका रहन-सहन और काम धन्धों के बारे में जानकारी प्राप्त करते। इसका परिणाम यह हुआ कि अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष तौर पर मिशन के कार्य ने व्यापार को भी बढ़ावा दिया। ये मिशनरी या व्यापारी जहां भी जाते वहां के धार्मिक ढांचे को खत्म करने का प्रयास करते और ईसाई धर्म का प्रचार करते। धीरे-धीरे यह कार्य सारे संसार में फैलने लगा। जहां मिशनरी अपने प्रयास में सफल नहीं होते थे वहां पर व्यापार के जरिए या धन और बल से यह कार्य किया जाने लगा। संसार के जो भाग गुमनामी के अंधेरे में छिपे हुए थे, उनकी खोज की गई। इसके लिए लम्बी-लम्बी समुद्री यात्राएं की गई। जान की परवाह न करते हुए अनेक साहसी लोगों ने इन कार्यो में अपना हाथ बंटाया।

ईसाई धर्म के भूमण्डलिक प्रचार और प्रसार का कार्य सीधे तौर पर 'अंतिम दिन की तैयारियों (एण्ड टाईम एक्सपैक्टेशन)' पर केन्द्रित था। यह

प्रचार पुरजोर से किया गया कि जीसस की वापसी अत्यंत निकट है। ईश्वर के साम्राज्य की स्थापना के लक्ष्य ने पूरी ईसाईयत को एक अद्वितीय जोश से भर दिया था। इस विश्वास के कारण लोगों में अविश्वसनिय क्रियाशीलता का संचार हुआ। इस शिक्षा पर जोर दिया गया कि प्रभू ईसा मसीह के आगमन के लिए रास्ता तैयार करना (Matt 3:3) और रास्ते की सभी रूकावटों को दूर करना हर ईसाई का परम् कर्तव्य है।

ईसाईयत के लम्बे-चौड़े विस्तार की उपलब्धि में इस मरणोपरान्त भय ने बहुत अधिक भूमिका निभाई। कोलम्बस जिसने पंद्रहवीं शताब्दी में भारत देश में पहुंचने के लिए विशाल समुद्र को पार करने का निश्चय किया और पश्चिम की तरफ यात्रा आरंभ की, उसका यह मानना था कि शैतान भारत देश में निवास करता है इसलिए वह जीसस के उपदेश को फैलाने में बाधा डाल रहा है और मसीह की वापसी में देरी का कारण बना हुआ है। मरणोपरान्त गणना के अनुसार कोलम्बस का यह मानना था कि मसीह पुनः प्रकट होने के लिए बस द्वार पर दस्तक देने ही वाले हैं (The time for the return of Christ is nearly at hand) इसलिए छोटे से छोटे समुद्री रास्ते की तलाश की जाए ताकि शीघ्रताशीघ्र भारत देश पहुंचा जा सके और ईसाई मिशन के तहत शैतान के आखरी किले को भी नेस्तनाबूद किया जा सके। (इन्साक्लोपीडिया ब्रितानिका : क्रिस्चैनिटि)। इसी मरणोपरांत भविष्यवाणी की कल्पना ने स्पेन के फ्रांसीस जेवियर को सोलहवीं शताब्दी में भारत और जापान की यात्रा करने के लिए मजबूर किया था। इसके बाद भी सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में कभी पूरीटेन्स तो कभी परोटैस्टेंट चर्च (बारथोलोमास और हेनरिच पलित्सचाऊ)के मिशनरीज भारत में ईसाई धर्म के प्रचार के लिए प्रतिनिधि बनकर आते रहे और कार्य करते रहे।

धर्म के शांतिदूत पाल ने अपने जीवन में ईसाई धर्म के प्रचार के लिए अति दुरगामी देशों की इतनी यात्राएं की जो किसी भी मनुष्य के लिए दुर्लभ और कठिन कार्य है, वे कहते थे कि उनके स्वप्न में देवदूत

मेसडोनियन ने प्रकट होकर कहा है कि भारत के लोग सहायता के लिए पुकार रहे हैं, "Come over and help us (Acts 16:9), साथ ही एक भारतीय मनुष्य को हाथ के संकेत के द्वारा किसी को मदद के लिए पुकारते हुए दिखाया गया। इसके बाद भी बीसवीं शताब्दी तक ईसाई धर्म के मिसनरीज धर्म के प्रचार के लिए सारे संसार में उत्साह के साथ कार्य करते रहे। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में अमेरिकन फ्री चर्च और सम्प्रदायों ने सारे विश्व में मिसनरी स्टेशनों का जाल फैला दिया जहां पर मिसनरीज को शिक्षण -परीक्षण दिया जाता था और उसके बाद प्रभू के कार्य को सम्पन्न करने के लिए विश्व के विभिन्न स्थानों पर भेजा जाता था।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में जब स्वामी विवेकानंद शिकागो सर्वधर्म सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि बनकर भाग लेने पहुंचे तो उस समय अमेरिकन धर्म मिशनरीज का कार्य लग्न और उत्साह के साथ चल रहा था। सम्मेलन के आरंभ में स्वामी जी को बोलने के लिए केवल कुछ ही मिन्टों का समय दिया गया था लेकिन जब वह बोलने लगे तो सारे श्रोता उनके भाषण और वाणी पर मंत्रमुग्ध होते चले गये। उसके बाद तो उस सम्मेलन में अंत तक स्वामी जी ही छाए रहे। कई विषयों पर उनके भाषण हुए। स्वामी जी ने कहा - ''ज्ञान किसी एक देश की बपौती नहीं है। जो लोग यह कहते हैं, मेरा धर्म ही संसार का एकमात्र श्रेष्ठ धर्म है, वे लोग वास्तव में दया के पात्र हैं। जिन धर्मो अथवा विचारों में आदान-प्रदान के रास्ते खुले रहेंगे वही दुनियां में जीवित रहेंगे।'' स्वामी जी के भाषणों के बाद अमेरिका के समाचार पत्र न्यूयार्क हेराल्ड ने लिखा था -''जिस देश में स्वामी विवेकानंद जैसा धर्म प्रचारक है, वहां पर अमेरिका ईसाई प्रचारकों को भेजने की मूर्खता क्यों करता है।'' उसी देश के एक दूसरे पत्र प्रेस आफ अमेरिका ने लिखा था --''हिन्दू दर्शन के आचार्य स्वामी विवेकानंद के सामने ईसाई प्रचारक बौने नजर आते हैं।''

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी की वैज्ञानिक खाजों ने ईसाई धर्म

को सोचेने पर मजबूर कर दिया और कुछ लोगों ने खुले दिमाग से सोचना आरम्भ कर दिया था। इनमें से मुख्य खोज थी चार्ल्स डारविन की जो ब्रिटेन के प्रकति वैज्ञानिक थे। यद्यपि उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से अध्यात्मशास्त्र की डिग्री प्राप्त की थी लेकिन उनके प्रकति के प्रति प्रेम और भ्रूण (बीटल्स)के साथ खेलने के स्वभाव ने उन्हें अद्वितीय खोज करने की तरफ मोड़ दिया। अध्यात्मशास्त्र का अध्ययन करने से पहले इन्हें सोलह वर्ष की आयु में चिकित्साशास्त्र के अध्ययन के लिए एडिनबरा विश्वविद्यालय में भेजा गया लेकिन धार्मिक और संवेदनशील स्वभाव होने के कारण वे इसमें सफल न हो सके क्योंकि वे शल्य चिकित्सा को देखकर भयभीत हो जाते थे।

अठारह सौ उन्नसठ में डार्विन की 'द ओरिजन आफ स्पिशीज बाय नेचुरल सलेक्शन' नामक पुस्तक का प्रकाशन हुआ। इस पुस्तक ने धार्मिक क्षेत्र में चारों ओर खलबली मचा दी क्योंकि इसमें जीवों की उत्पत्ति के विषय में धार्मिक विचारों का खण्डन किया गया था। ईसाई धर्म, यहुदी और इस्लाम धर्म की मान्यता है कि आदम और इव के पतन के कारण मनुष्य को पथ्वी पर फैंका गया और जब तक मनुष्य इस गुनाह की सजा नहीं भुगत लेता और पश्चाताप के द्वारा पैगम्बर की शरण में नहीं जाता तब तक उसका पुनः उद्वार सम्भव नहीं है। लेकिन डार्विन ने इस धारणा को गल्त सिद्व किया। अपने अध्ययनों के आधार पर यह सिद्व किया कि सभी जीवों का आज का रूप किसी एक सरल प्राणी से हुआ है जो करोड़ों वर्ष पहले पथ्वी पर पैदा हुआ था। इसी प्राणी से सभी पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं की उत्पत्ति हुई और एक क्रमिक विकास के तहत उन्होंने आज का रूप धारण कर लिया है।

डार्विन की यह खोज कापरनिकस के बाद धार्मिक मान्यताओं के ऊपर सबसे बड़ी चोट थी। इसके बाद जहां-जहां से धर्म की जड़े मजबूत हुई थी व धर्म को मजबूत आधार की प्राप्ति हुई थी, वहीं पर नास्तिकता का

प्रभाव भी अपनी जड़ें जमाने लगा जिसके परिणामस्वरूप कार्ल मार्क्स का द्वंद्वात्मक सिद्धान्त (डायलेक्टिक मैथड) ओर अधिक प्रभावकारी साबित हो सका। देखते-देखते मार्क्सवादी विचारधारा जर्मनी, फ्रांस, इटली सहित अधिकतर यूरोप और संसार के दूसरे भागों में छा गई। दूसरे विश्व युद्ध के बाद यह विचारधारा ओर भी प्रबलता के साथ बहने लगी और कई देशों में इस विचारधारा वाली पार्टियों की सरकारें अस्तित्व में आ गई। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान हिटलर को हराने के लिए अमरीका और रूस को मिलकर लड़ाई लड़नी पड़ी। हिटलर को पराजित करने के बाद जहां-जहां अमेरिका का समर्थन करने वाली फौजें मौजूद थी वहां-वहां अमेरिका की सहयोगी सरकारें कायम हुई और जहां पर रूस का समर्थन करने वाली फौजें विद्यमान थी वहां पर वामपंथी सरकारों की स्थापना हुई। इसी कारण कुछ देशों का बंटवारा भी हो गया जैसे जर्मनी, कोरिया और वियतनाम। इसका कारण यह था कि इन देशों के आधे भाग पर अमरीका और दूसरे आधे भाग पर रूस समर्थित फौजों का कब्जा था।

यात्रा आरम्भ हुई थी ईश्वर का साम्राज्य स्थापित करने के लिए लेकिन उसका अंत हुआ दो विश्व युद्धों के रूप में जिससे संसार दो भागों में बंट गया और विनाश के कगार पर पहुंच गया। ईसाई प्रचारकों की तूफ़ानी यात्राओं ने संसार में व्यापार को बढ़ावा दिया। इस व्यापारिक प्रवति और बढ़ते हुए उद्योगीकरण ने व्यापार पर कब्जा करने के लिए आपसी स्पर्धा (कम्पिटीशन) को जन्म दिया। देशों और नए-नए क्षेत्रों पर कब्जा करने की होड़ लग गई। व्यापारिक मंडियों पर अधिकार करने के लिए लड़ाइयाँ लड़ी जाने लगी और परिणामस्वरूप सारा संसार युद्ध की चपेट में आ गया।

इतना ही नहीं धर्म के नाम पर अनेकों धर्मयुद्ध लड़े गए। ईसा मसीह से संबंधित जो भी स्थान थे उन्हें मुस्लिम शासकों से आजाद करवाने के लिए ईसाईयों ने सन् दस सौ पिचानवे ई० से बारह सौ इकानवें

ई० के बीच के लगभग दो सौ साल में आठ मुख्य धर्मयुद्ध लड़े। ये युद्ध बहुत ही भयानक थे और इन्होंने इन्सानियत की सभी सीमाएं पार कर दी थी। उसकी जड़े हिला दी थी। पांचवें युद्ध तक धार्मिक उन्माद और पागलपन इस हद तक बढ़ गया था कि इसमें बच्चों को भी नहीं बख्शा गया। उन्हें भी जेहादी शिक्षा देकर युद्ध की अग्नि में झोंक दिया गया। यह युद्ध सन् बारह सौ बारह ई० में आरम्भ हुआ, इसे चिलड्रनस क्रूसेड अर्थात् बच्चों का धर्मयुद्ध कहा जाता है।

जब सन् दस सौ इकत्तर ई० में तुर्को ने येरूशलम पर अधिकार कर लिया तब उसको मुक्त कराने के लिए ईसाईयों ने व्यापक पवित्र युद्ध छेड़ दिया। सन् बारह सौ बारह में पांचवां धर्मयुद्ध लड़ते हुए बच्चों ने तुर्को का सामना किया। इस युद्ध का सेनापति भी एक बच्चा ही था। इस सेना में फ्रांस के तीस हजार और जर्मनी के बीस हजार बच्चे शामिल थे। सभी बच्चे युद्ध की ज्वाला के भेंट चढ़ गए थे। फ्रांस का केवल एक और जर्मनी के दो सौ बच्चे इस युद्ध में जीवित बच पाए थे। इस समय धार्मिक दुर्भावना इतनी बढ़ गई थी कि बच्चों के द्वारा फ्रांस में उन लोगों को भी मौत के घाट उतार दिया गया जो पोप के विरोधी थे या दूसरे धर्मो के प्रति सहानुभूति रखते थे।

जो साम्राज्य इतने असहाय और निरपराध लोगों की बलि देकर स्थापित किया जाए, क्या ऐसा साम्राज्य ईश्वर का साम्राज्य हो सकता है? किगंडम आफ गाड हो सकता है? क्या ऐसे साम्राज्य में ईसा मसीह पुनः प्रकट हो सकते हैं? वे तो दया की मूर्ति थे। स्वयं की कुर्बानी दे सकते थे लेकिन किसी की कुर्बानी स्वीकार करना उनकी फितरत, उनका स्वभाव कैसे हो सकता है? यह सम्भव नहीं है। ईसाई भविष्यवाणी के अनुसार ईसा मसीह के प्रकट होने का समय या तो जा चुका है या अति निकट ही है। यदि ईसा मसीह पुनः जन्म ले भी लें तो क्या संसार का कोई भी व्यक्ति इतना समर्थ है जो उन्हें पहचान सके? हीरे की पहचान करने के लिए

जौहरी का होना जरूरी है। यदि जौहरी होने का ज्ञान नहीं है तो वह हीरा उस तरह है जैसे एक पशु के सामने दौलत का अपार भण्डार या अज्ञानी के सामने ज्ञान की गुहार जो उसे समझने में ही समर्थ नहीं है।

इसीलिए ईसा मसीह कहते हैं ''यदि तुम्हारे पास कान हैं तो सुनो, यदि तुम्हारी आंखें हैं तो देखो, मैं कहीं दूर नहीं हूं, हमेशा तुम्हारे निकट खड़ा हूँ। मांगों, मैं हाजिर हूं, दरवाजा खोलो मैं तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे रहा हूं।'' जब आत्मा को पाने के लिए हमारी मांग ही नहीं है तो जीसस का प्रकट होना कैसे सम्भव हो सकता है। जीसस के प्रवेश के लिए दरवाजे का खुलना कैसे हो सकता है? जीसस हमेशा प्रकट हैं। वे कहते हैं कि मैं कम्फर्टर बनकर सदा तुम्हारे साथ हूं। हर पल तुम्हारी रक्षा कर रहा हूं। लेकिन ईश्वर के साम्राज्य की स्वयं गंठित परिभाषा ने उनकी शिक्षाओं का अर्थ ही बदल दिया है। उनके होने को न होना कर दिया है। उन्हें शरीर के साथ बांध दिया गया है। आत्मा की मुक्ति को शरीर की मुक्ति बना दिया गया है।

जीसस आवाज दें तो क्या हम सुन सकते हैं? यदि वे हमारे सामने प्रकट हो जाएं तो क्या हमारे पास वह आंख है जो उन्हें देख सके? जो आंख उन्हें जीवित होते हुए नहीं देख सकी, क्या अब उसमें इतना सामर्थ्य आ गया है जो उनके जुहूर को पहचान सके? उनकी आवाज स्थूल आवाज नहीं है जो स्थूल कानों से सुनाई दे सके या उनका दर्शन वह दर्शन नहीं है जिसे हमारी स्थूल आंखें देख सकें, मलिनता के पर्दे में छिपी हुई उनका दीदार कर सकें। एक जागत आत्मा ही जीसस के आत्मरूप की झलक पा सकती है। एक निर्लेप कर्णेन्द्रि ही उनकी आवाज की ऋचाओं पर मदमस्त हो सकती है। यह तब होगा जब हम किसी भी तरह की सांसारिक इच्छा से निवति पा सकेंगे। किसी भी वासना की आशक्ति से विरक्त हो सकेंगे। किसी भी योग से वियोग के शुन्य में अहंकार रहित होकर मुक्त अवस्था में विचरण कर सकेंगे। आत्मा स्वयं परमात्मा के रूप में अभिव्यक्त

हो सकेगी। आत्मा नए आदम अर्थात् ईसा मसीह, पैगम्बर, राम या कष्ण के रूप के अन्दर साधर्म एकता स्थापित कर सकेगी। जब तक आत्मा स्वयं को नए आदम के रूप में नहीं पा जाती है तब तक इंसान और आदम के बीच की दूरी को तय नहीं किया जा सकता है। नए आदम से यह दूरी तब तक इंसान को इंसान से नफरत का पाठ पढ़ाती रहेगी। धर्मयुद्ध लड़े जाते रहेंगे। ईश्वर के साम्राज्य की स्थापना के नाम पर धर्मराजनीति की चाल चलती रहेंगी। दूसरे धर्म के लोगों को हम काफिर का नाम देते रहेंगे, उन्हें शैतान की औलाद कहकर उनपर पत्थर फैंकते रहेंगे। जब ईसा मसीह को शैतान की औलाद कह कर सूली पर चढ़ा दिया गया तो इस खेल में साधारण आदमी की क्या बिसात है।

यह खेल अंहकार का खेल है जिसने ईसा मसीह के द्वारा कहे गए ''ईश्वर के साम्राज्य' के अर्थ ही बदल दिए हैं। स्वर्ग का साम्राज्य क्या है इसी का वर्णन ईसा मसीह इस कहावत में कर रहे हैं। वे कहते हैं -

Jesus said:

The Kingdom is like a shepherd

who had one hundred sheep.

जीसस कहते हैं कि स्वर्ग का साम्राज्य एक गडरिए की तरह है, उस गढ़रिए की तरह जिसके पास एक सौ भेड़े थी। भेड़ों का अर्थ यहां पर जीवन की ताकतों से लिया गया है। हमारे अन्दर जीवन को निर्मित करने वाली जितनी भी धाराएं हैं, जितनी भी उर्जा की सतह हैं उनकी ताकत को यदि एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया जाए तो जीवन में आलोक पैदा हो जाए, रिद्म पैदा हो जाए, जीवन की उत्थल-पुत्थल से मुक्ति मिल जाए और मनुष्य सहज ही जीवन-मुक्त अवस्था को प्राप्त कर जाए।

एक दूसरी कहावत में जीसस स्वर्ग के साम्राज्य के अस्तित्व के बारे में बताते हैं। उस कहावत में वे कहते हैं कि स्वर्ग का साम्राज्य एक सरसों के बीज की तरह है जो सब बीजों से छोटा होता है लेकिन जब यह बीज

तैयार की गई जमीन पर गिरता है तो अनुकूल वातावरण मिलते ही उसमें से एक बहुत बड़ा पेड़ अस्तित्व में आता है। एक ऐसा पेड़ जिसकी शाखाएं दूर-दूर तक आकाश में फैल जाती हैं और आकाश में जितने भी पक्षी हैं उस पेड़ के नीचे आश्रय लेते हैं।

इस कहावत में जीसस स्वर्ग के साम्राज्य के जीवन के बारे में बता रहे हैं कि वहां का जीवन कैसा है। वे कहते हैं कि स्वर्ग का साम्राज्य एक चरवाहे की तरह है जिसके पास सौ भेड़ें थी। गढ़रिया और भेड़ें दोनों मिलकर स्वर्ग के जीवन का प्रतीक हैं। गढ़रिया है और भेड़ नहीं है तो भी स्वर्ग के साम्राज्य का जीवन अधूरा है और यदि भेड़ें है लेकिन गढ़रिया नहीं है तो भी स्वर्ग के साम्राज्य की पूर्णता संदिग्ध है। इसमें भेड़ों के रूप में पाशविक प्रवति में रहने वाली उर्जा, जो एक यंत्र की तरह कार्य करती है, को भी अंगीकार किया गया है और गढ़रिए के रूप में विवेकशील बुद्धि की आवश्यकता भी स्वीकार की गई है जो यंत्र की तरह बहने वाली उर्जा को दिशा प्रदान करती है। अर्थात् हमारी इन्द्रियां भेड़ों का प्रतिनिधित्व करती हैं और विवेकख्याति प्राप्त आत्मा गढ़रिए के रूप में इन्द्रियों की संभाल करती है। उनकी उर्जा को अपनी चेतना के विकास के लिए सीढ़ी बनाकर आध्यात्मिक सफर तय करती है।

शरीर और इन्द्रियों का अर्थ है सांसारिक चेतना जो भौतिक अर्थात् स्थूल रचना का चोला पहनकर नाना रूप में अटखेलियां कर रही है, यंत्रवत बह रही है, एक मशीन की तरह व्यवहार कर रही है। पर्वत के शिखर से पानी की धार निकली, जिस तरफ भी ढलान मिला उसी तरफ अपने वेग में बहती चली गई और मिल गई समुन्द्र में जाकर अंत में। यह बहाव भौतिक चेतना का यंत्रवत बहाव है। यदि इस बहाव को बीच में रोक दिया जाए और धारा की शक्ति को मानव के कल्याण के लिए प्रयोग किया जाए तो यही शक्ति जीवन दायनी बनकर प्रकट हो जाती है और मनुष्य के लिए वरदान बन जाती है। बहते हुए पानी से बिजली पैदा होने लगती है

और सूखे खेत लहलहा उठते हैं। भेड़ों का जीवन भी इस यंत्रवत बहाव से बहुत अधिक मेल खाता है। यदि एक भेड़ नाला कूद जाती है तो सौ की सौ भेड़ें नाला कूदने का प्रयत्न करती हैं। उन्हें बीच में रोक पाना अति कठिन है। इसलिये यदि गढ़रिया नहीं है तो भेड़ें भी बहते हुए पानी की तरह यंत्रवत स्वभाव में बहती चली जाती हैं।

भेड़ों को बहते हुए पानी की तरह दिशा प्रदान करने के लिए एक गढ़रिए रूपी संयोजक की आवश्यकता है। यह शरीर इसी भौतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। इसे अन्नमय-ब्रह्म भी कहा गया है जिसके अन्दर प्राणमय-ब्रह्म जीवन के बीज अंकुरित करता है और इस अन्नमय ब्रह्म में गति का समावेश हो जाता है। बच्चे का जन्म होते ही शरीर और इन्द्रियां एक यंत्र की तरह विकास करने लगती हैं। यह यंत्रवत विकास अन्नमय ब्रह्म का विकास है जिसकी शिराओं में प्राणमय ब्रह्म अग्नि बनकर गति प्रदान करता है।

शरीर और इन्द्रियां भी उन भेड़ों की तरह यंत्रवत हैं जो निरंतर अपने स्वभाव में बहना चाहती हैं। सदा भोग और विलास का जीवन जीना चाहती हैं। यदि ज्ञान रूप बुद्धि इनके बहाव को नियंत्रित नहीं करती है तो ये इन्द्रियां आजीवन उसी मार्ग का चयन करके अपने संकल्प पर आरूढ़ रहती हैं। जब तक पूर्णतया जर्जर और विक्षिप्त नहीं हो जाती, मत्यु को प्राप्त नहीं कर जाती तब तक रूकने का नाम नहीं लेती हैं। इसलिये गढ़रिया रूपी विवेकशील बुद्धि शरीर और इन्द्रियों के बहाव को दिशा प्रदान करती है। उनके यंत्रवत स्वभाव में परिवर्तन करते हुए उन्हें भी उर्ध्वमुखी बनाकर आत्मिक अमतसरोवर में पवित्र स्नान करने का अवसर प्रदान करती है।

यह विवकेख्यातिप्राप्त बुद्धि आत्मा के प्रकाश में भागी है इसीलिए इसके अन्दर विवेक की धार बहती है, इसीलिए यह इतनी सक्षम है कि इन्द्रियों के इतने शक्तिशाली बहाव को रोक देती है। और उनके

रूपान्तरण में सहायक सिद्ध होती है। एक तरह से देखा जाये तो यह विवेकशक्ति प्राप्त बुद्धि परोक्ष रूप से आत्मिक इच्छा को क्रियात्मक रूप प्रदान करती है। उसकी विल को एग्जिक्यूट करती है। बीच में गढ़रिया बनकर परमात्मा की इच्छा को अमली जामा पहनाती है। ईश्वर का पैगाम लेती है और भौतिक चेतना की अचेतन गहराईयों तक उस पैगाम के स्वर के स्पंदन को भेजती रहती है। यह विवेकख्याति प्राप्त बुद्धि साधारण बुद्धि नहीं है बल्कि पुरूष (आत्मा) की सन्निधि (निकटता) से आलोकित ईश्वरीय दूत है जो सांसारिक चेतना में ईश्वर के संदेश का प्रसारण करती है।

अतः गढ़रिया और भेड़ें सूक्ष्म और स्थूल अस्तित्व के जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब तक भेड़ रूपी भौतिक संसार ईश्वरीय साम्राज्य के एश्वर्य से खाली है तब तक स्वर्ग (ईश्वर) के साम्राज्य की स्थापना कल्पनामात्र है। जब तक सांसारिक व्यक्ति ईश्वरीय आनंद में प्रतिभागी नहीं है तब तक दीन, हीन, गरीब और भूखे व्यक्ति के लिए ईश्वर के होने का कोई अर्थ नहीं है। इसीलिए स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि यदि ईश्वर दरिद्रनारायण नहीं है और वह दरिद्रों व भूख से व्याकुल लोगों की सहायता करने में असमर्थ है तो उस ईश्वर के होने के कोई मायने नहीं हैं। श्री अरविन्द कहते हैं कि ईश्वर का एश्वर्य भौतिक चेतना में भी उतरना चाहिए तभी ईश्वर के साम्राज्य की स्थापना अर्थपूर्ण है, ओजपूर्ण है।

इस कहावत में गढ़रिया ईश्वर का दूत है जो अलौकिक शक्ति को लिए हुए हमारे अर्थात भेड़ों के बीच में विराजमान है और भेड़ें सांसारिक चेतना का प्रतीक हैं जिसकी पूर्ति हुए बिना स्वर्ग के साम्राज्य की पूर्ण स्थापना संभव नहीं है। सांसारिक अस्तित्व भी परमात्मा का एक अंग है जिसने स्थूल वस्त्र धारण कर लिए हैं और इस अंग की उपेक्षा करना परमात्मा के अस्तित्व को नकारना है। और यह तब हो सकता है जब गढ़रिए और उसकी सारी भेड़ों में सम्पूर्ण तारतम्यता हो। हमारी आत्मा और शरीर में बहने वाली समस्त उर्जाओं की दिवारें एक स्वर में अवस्थित हों।

उनके अन्दर द्वैतवाद का कोई भाव विराजमान न हो, अद्वैत की सिद्धी हो, इन्द्रियों में बहने वाली सारी ताकत आत्मिक अनुभव से ओतप्रोत हो। आगे जीसस क्या कहते हैं -

One of them went astray,

which was the largest.

जीसस कहते हैं कि ईश्वर का साम्राज्य एक गढ़रिए की तरह है जिसके पास सौ भेड़ हैं, उनमें से एक भेड़ रास्ता भटक जाती है जो सबसे बड़ी है। साधारण तौर पर भेड़ रास्ता नहीं भटकती है। ऐसा कहा जाता है कि खाई पार करते समय यदि एक भेड़ खाई में गिर जाए तो सारी भेड़ें उसका अनुसारण करती हैं। रेल की पटरी पार करते समय यदि एक भेड़ रेलगाड़ी के नीचे आ जाए तो सारी की सारी भेड़ें उस एक भेड़ के पीछे जाते हुए अपनी जान दे देती हैं। भेड़ों के इस उदाहरण में अनोखी एकता है लेकिन विवेक नहीं है। एक ही तरफ आंख बंद करके चलने की प्रवत्ति है लेकिन कायरता का अनुसरण है। यह अनुसरण आंधी में बहते हुए उस तिनके के समान है जिसका अपना कोई वजूद नहीं है, संकल्प नहीं है। जिस तरफ हवा बहती है तिनका भी उड़ा चला जा रहा है। उसके अंदर ऐसा कोई अहसास नहीं है कि उसकी भी कोई मंजिल है। उसके अंदर ऐसा कोई जागरण नहीं है जो उसकी चेतना को कुरेद सके और बता सके कि वह भी अपना रास्ता चुन सकता है। उसके लिये चुनाव नहीं है और चुनाव का होना ही व्यक्ति के होने को दर्शाता है। चुनाव नहीं है तो मुक्ति भी संभव नहीं है।

संसार के सारे जीवों में आदमी ही एक ऐसा जीव है जो चुनाव कर सकता है। अपना रास्ता खुद तय कर सकता है। संसार के सारे धर्मो में चुनाव नहीं है, एक तरह की भेड़ चाल है क्योंकि चुनाव कभी फ्लोक नहीं हो सकता, झुंड नहीं हो सकता, भीड़ का विषय नहीं हो सकता। भीड़ एकत्रित करने को महत्व देने वाले लोग राजनेता या जादुगर हो सकते हैं

संत नहीं। भीड़ का प्रयोग केवल स्वार्थ सिद्धि के लिए किया जाता है अपने महत्व को दर्शाने के लिए किया जाता है। भीड़ में शामिल होकर या भीड़ के इस्तेमाल से हम शारीरिक मुक्ति तो प्राप्त कर सकते हैं लेकिन आत्मिक मुक्ति सम्भव नहीं है। वह चुनाव का विषय है और चुनाव के लिए विवेक, साहस और जागरण की आवश्यकता होती है। भीड़ वही काम करती है जिसके लिए उसे कहा जाता है। भीड़ में आत्म मंथन और आत्मविश्लेषण की संभावना बहुत ही कम है।

यह सत्य है कि जो व्यक्ति शारीरिक और मानसिक रूप से आजाद है वही आत्मिक मुक्ति के बारे में सोच सकता है। यदि शारीरिक और मानसिक गुलामी की बेड़ियां मनुष्य के पैरों में पड़ी हुई हैं तो आत्मिक स्वतंत्रता संभव नहीं है। लेकिन यह भी सत्य है कि आत्मिक चिंतन व आध्यात्मिक मंथन ही मनुष्य को कायरता से उभार सकता है, साहस और जागति प्रदान कर सकता है क्योंकि आत्मा का अर्थ है सार्वभौमिक मुक्ति, सर्व-सामर्थ्य का आह्वान। यदि इतिहास को देखा जाए तो जितनी भी आजादी की लड़ाइंयां लड़ी गई हैं या क्रियात्मक जन आंदोलन किए गए हैं उनके पीछे या आधार में आध्यात्मिक प्रेरणा मौजूद रही है। आमतौर पर यह होता है कि जब भी कोई आंदोलन सफलता की ओर अग्रसर होता है तो उस पर स्वार्थी और नास्तिक लोगों का अधिकार हो जाता है उनकी तर्कबुद्धि के आगे आध्यात्मिक सादगी और वैचारिक सरलता हार जाती है। सच्चा अध्यात्म हमेशा दूसरे के लिए जीना सिखाता है। बलिदान करना सिखाता है, दूसरे के गुणों को उभारना सिखाता है। किसी के अधिकारों का हनन करना या दूसरे की कीमत पर स्वयं को स्थापित करना अध्यात्म की फितरत नहीं है। अध्यात्म का प्रथम और आखरी पैगाम है किसी भी कार्य को निस्वार्थ भावना से करना और फल की इच्छा न करना। यही गीता का संदेश भी है।

धर्मो की इसी भेड़चाल ने अध्यात्म की अगणनीय हानि की है।

सदियों से अनेक लोगों की जान ली हैं, धर्मयुद्ध लड़े गए हैं। जेहाद का आह्वान किया गया है। आज भी किया जा रहा है, यह अध्यात्म नहीं है। यदि विवेक है, साहस है और जागरण है तो इन बुराइयों से बचा जा सकता है। अध्यात्म का सच्चा अर्थ समझ में आ सकता है। लेकिन इसका आधार चुनाव है यदि हम चुनाव करने में समर्थ नहीं हैं तो हममें और भेड़ों में कोई फर्क नहीं है।

लेकिन इस कहावत में जीसस भेड़ों के स्वामी हैं जो चुनाव करने में असमर्थ होती हैं परन्तु फिर भी एक भेड़ चुनाव करती है। जो रास्ता भटक जाती है। भेड़ रास्ता नहीं भटक सकती है जब तक वह स्वयं इसका चुनाव न करे। जब तक उसके अंदर साहस पैदा न हो या स्वयं के प्रति जागरण न हो तब तक वह रास्ता नहीं भटक सकती है। इसी भटकन में इस कहावत का रहस्य छिपा हुआ है और जीसस कहते हैं कि वही भेड़ सबसे बड़ी और सबसे महत्वपूर्ण है। कहावत में आगे कहा गया है

He left behind the ninety-nine,
He sought for the one
Until he found it.

जीसस कहते हैं कि जो भेड़ रास्ता भटक गई है वह सबसे बड़ी भेड़ है। जीसस यह नहीं कह रहे हैं कि जो सबसे बड़ी भेड़ है वह रास्ता भटक गई है। बल्कि इसके विपरीत कह रहे हैं कि जो भेड़ रास्ता भटक गई है वह भेड़ सबसे बड़ी और गढ़रिए की कामयाबी का रहस्य हैं। रास्ता भटकने से पहले सारी भेड़ें समान हैं, उन सभी के अन्दर एक जैसी संभावनाएं मौजूद हैं, कोई बड़ी छोटी नहीं है। लेकिन जहां भी आत्ममंथन शुरू हुआ, जागरण आरम्भ हुआ, यह महसूस हुआ कि मैं इस भीड़ का हिस्सा नहीं हूँ, मेरी मंजिल इससे भिन्न है वहीं से चुनाव आरम्भ होता है और रास्ता निकलता है विरान जंगलों की तरफ, विकट घाटियों से होता हुआ जिसमें शायद मंजिल भी दष्टिगोचर नहीं है। अतः इसके लिए अदम्य

साहस और अटूट तारतम्यता की आवश्यकता है। कायर और निष्क्रिय व्यक्ति इस मार्ग पर चलने में सक्षम नहीं हैं। इसीलिये जीसस कह रहे हैं कि जो भेड़ रास्ता भटक गई है वह सबसे बड़ी है।

व्यक्ति जब किसी मुर्शिद के पास जाता है, सद्गुरू की शरण में जाता है तो वह सहज ही सद्गुरू पर विश्वास कर लेता है और भीड़ का एक हिस्सा बन जाता है। लेकिन यदि वह साधनारत है, ध्यान का अभ्यास करता है तो उसके अंदर एक नई जीवन शक्ति का संचार होता है। और उसके सामने एक नए क्षितिज की संभावना प्रकट होती है, उर्जा का एक नया तल खुलता है जिससे वह अनभिज्ञ होता है, अनजान होता है क्योंकि वहां तक उसकी बुद्धि की पहुंच नहीं है। अब वह सद्गुरू को एक नए रूप में देखता है उसकी दष्टि भीड़ की दष्टि से भिन्न है। भीड़ को सद्गुरू एक साधारण व्यक्ति नजर आता है लेकिन उसकी नजर में सद्गुरू की पहचान भिन्न है। जो भी साधक उर्जा के इस तल पर छलांग ले जाता है वही मुख्य है, उसी की पहचान सद्गुरू की नजरों में विशेष है, वही भेड़ों की भीड़ में सबसे बड़ी भेड़ है।

ऐसा साधक चेतना के नए तल पर खड़ा हुआ है। वह नीचे के तल पर घट रही घटनाओं को देख सकता है, नीचे के विरोधी व्यवहार को ऊपर की एकता में समाते हुए देख सकता है, अनकेता के मण्डल में रहता हुआ एकता के मण्डल में ठहर सकता है। अब वह खुल कर विचारों के मण्डल में भी विचरण कर सकता है। अब उसका विश्वास अंधविश्वास नहीं है, वह भीड़ के अंधविश्वास से अलग हो गया है। यदि उसके विचार में सद्गुरू की किसी बात को लेकर द्वंद उठता है तो वह उसके आधार और वास्तविक मंतव्य को समझ सकता है। वह वैचारिक दष्टि से सद्गुरू के विपरीत सोचता हुआ भी सद्गुरू के रूहानी रूप के अंतिम स्रोत से जुड़ा रहता है और द्वैतवाद रूपी शैतानी छाया की लपेट में नहीं आता है। उसके समर्पण में कोई कमी नहीं आती है। वह सद्गुरू की पूर्णता में रहता हुआ नीचे के

अपूर्ण अस्तित्व में सहज ही व्यवहार करता रहता है। लेकिन भीड़ में चलने वाला व्यक्ति जो साधारण चेतना के स्तर पर खड़ा हुआ है वह सद्गुरू के रहस्यमयी व्यवहार को समझ नहीं पाता है और बुद्धि के तराजु से वह सद्गुरू की बातों को तोलता रहता है, अतः उसका विश्वास अति शीघ्र खण्डित हो सकता है। इसके विपरीत साधनारत व्यक्ति अंदर से अखण्डित रूप से सद्गुरू के अंदर समाया रहता है, इसलिए वही सबसे महत्वपूर्ण शिष्य रूपी भेड़ है।

He left behind ninety-nine,
he sought for the one
until he found it.

जब एक भेड़ समुह से बिछुड़ जाती है तो वह मुर्शिद की नजरों से बच नहीं पाती है। मुर्शिद उसे अपनी निगाहों से दूर नहीं जाने देते हैं और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर उसके गंतव्य स्थान तक पहुंचाने में उसकी मदद भी करते हैं क्योंकि वह जानते हैं कि इस भेड़ के अन्दर संभावनाओं का अंकुर फूटने लगा है। बाकि भेड़ें अभी सुषुप्त अवस्था में हैं, उनके जागरण में अभी समय है। इसलिए जीसस उस एक भेड़ को ढूंढने के लिए निकल पड़ते हैं और बाकी की निन्यानवे भेड़ों को पीछे छोड़ देते हैं। वह एक भेड़ अनेकता के मण्डल में चली गई है जहां उसका सामना तरह-तरह की ताकतों से होगा और संभव है उसका विश्वास और श्रद्धा डगमगा जाए। लेकिन एकता के मंण्डल में स्थाई तौर पर ठहरने के लिए और सच्ची शांति को अनुभव करने के लिए अनेकता के मण्डल की गर्म-ठण्डी हवाओं का अनुभव होना अत्यंत आवश्यक है ताकि उस एक भेड़ को यह पता लग सके कि अनेकता के मण्डल की व्याधियां और विषमताएं कैसी हैं और मुर्शिद के साथ रहकर एकता के मण्डल में ठहरने का सुख कैसा है। जब मुरीद (शिष्य) ऐसी अवस्था से गुजर जाता है तो मुर्शिद उसकी तरफ से निश्चिंत हो जाता है। अब वह शिष्य धीरे-धीरे अपनी मंजिल तक

अवश्य पहुंच सकेगा जबकि दूसरे शिष्य जिनके अंदर चेतना की जागति का अंकुरण अभी नहीं फूटा है, उनका विश्वास अभी अंधविश्वास की खाइयों में फंसा हुआ है। ऐसा शिष्य किसी भी चमत्कार को देखकर पतन की तरफ अग्रसर हो सकता है। ऐसे शिष्य को मार्ग पर लाने के लिए अधिक मसक्कत करनी पड़ती है जो शिष्य चमत्कार और रिद्धि-सिद्धियों के कायल होते हैं। इसमें जन्म-जन्मों का समय भी लग सकता है क्योंकि उर्जा के जिस स्तर पर मनुष्य खड़ा हुआ है वहां से उत्थान की बजाय पतन की यात्रा अधिक लम्बी हो सकती है। इसलिए सद्गुरू दयाल होते हैं जो किसी भी शिष्य के पथभ्रष्ट होने पर उसकी तरफ ख्याल को हमेशा जोड़े रखते हैं तथा उसकी घर-वापसी का इंतजार करते रहते हैं। मेरे सद्गुरू राधास्वामी दयाल परम संत ताराचन्द जी महाराज कहते थे कि शिष्य सद्गुरू को छोड़ सकता है लेकिन सद्गुरू शिष्य को कभी नहीं छोड़ता है। इसी कथन की सिद्धि जीसस इस कहावत में कर रहे हैं कि वे निन्यानवे भेड़ों को पीछे छोड़ कर उस बिछड़ी हुई एक भेड़ को ढूंढने निकल जाते हैं और तब तक उसे ढुंढते रहते हैं जब तक खोज नहीं कर लेते हैं।

अंत में जीसस उस भेड़ को ढूंढने में सफल हो जाते हैं जो रास्ते से भटक गई थी। सद्गुरू की कामयाबी और सामर्थ्य भी इसी बात में छिपे हुए हैं कि वह हारे हुए और पथ से विचलित व्यक्तियों के लिए संजीवनी बूटी साबित हो, उन्हें अन्धविश्वास और धार्मिक कुरीतियों से दूर करे और जीवन के सत्य से अवगत कराए। अहंकार और मिथ्याचार के जीवन से मुक्ति दिलाए तथा प्रेम और आपसी सौहार्दय को मजबूत करे। जीवन की सफलता एक दूसरे से दूर भागने में नहीं है। एक दूसरे से नफरत करने में नहीं है बल्कि आपस में मिलकर रहने में है, एक दूसरे के विचारों का सम्मान करने में है। दो व्यक्तियों के विचार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं क्योंकि अनेकता के मण्डल का यही नियम है और सच्चाई भी। सष्टि के विकास के लिए अनेकता और भिन्नता का होना मनुष्य के लिए एक वरदान

है। जो व्यक्ति अनेकता और भिन्नता के इस रहस्य को समझ जाता है वह कभी भी एक दूसरे को हानि नहीं पहुंचा सकता है। वह एकता रूपी धागे में अनेकता रूपी मणियों के महत्व को समझ जाता है। वह एकता रूपी शरीर में अनेकता रूपी भिन्न-भिन्न अंगों की आवश्यकता को नकार नहीं सकता है। वह एकता रूपी ब्रह्मण्ड में उर्जा के भिन्न-भिन्न स्तर पर हो रहे परस्पर विरोधी व्यवहार को सहज ही स्वीकति प्रदान कर देता है।

अतः जीसस इस कहावत में भटकने वाली भेड़ से नाराज नहीं है बल्कि पुनः सौ भेड़ पाने की खुशी है जो पहले शायद नहीं थी क्योंकि अब उनमें से एक भेड़ ऐसी है जो सबसे अलग अनुभव से गुजर कर आयी है। उनमें कम से कम एक भेड़ ऐसी है-जो अदम्य साहस, विवेक और जागरण की प्रक्रिया से गुजरी है। एकान्त में रहने की कला से वाकिफ हो गई है। अब वह भीड़ में रहती हुई भी एकांत का अनुभव कर सकती है। जिसे एकता में रहते हुए भी अनेकता के मण्डल की सूझबूझ है। उसने असहमति के संसार को भी जीवन की एक सच्चाई मानकर सहमति प्रदान कर दी है। इसीलिए किसी ने सत्य ही कहा है -लेट अस अगरी टू डिसअगरी अर्थात् आओ हम सब असहमति के प्रति सहमत हो जाएं, क्योंकि यही प्रकति का नियम भी है जो सहज ही परस्पर विरोधी उर्जाओं को अपने अर्थपूर्ण प्रयोग के लिए एक ही स्थान पर संजो लेती है और उन दोनों विरोधी शक्तियों के विकास में सहायक सिद्ध होती है। कहावत के अंत में कहा गया है -

Having tired himself out,
he said to the sheep;
I love thee more than ninety-nine.

जीसस उस भेड़ को ढूंढते हुए थक जाते हैं और उससे अंत में कहते हैं कि मैं निन्यानवे भेड़ों की तुलना में तुमसे सबसे अधिक प्यार करता

हूं। जीसस बिछड़ी हुई भेड़ को खोजने में इतना प्रयत्न डालते हैं कि वे थक जाते हैं। यह पद्यांश मुर्शिद का अपने मुरीद के प्रति स्नेह को दर्शाता है। उस मुरीद के प्रति जो शिष्य-विशेष है जिसके अन्दर विशेष चैतन्य की धार मौजूद है। श्रीमद्भगवद् गीता में श्री कष्ण का अर्जुन के प्रति विशेष प्यार इस कथन की सिद्धि करता है। जिस शिष्य से सद्गुरू को काम लेना होता है वह उनकी नजरों में विशेष होता है। कामिल (पूर्ण) सद्गुरू और गुरूमुख शिष्य का संबंध मां और पुत्र की तरह होता है। मॉ और पुत्र के संबंध में फिर भी स्वार्थ छिपा हुआ हो सकता है, वह स्वयं की पूर्ति के लिए हो सकता है लेकिन कामिल सद्गुरू और गुरूमुख शिष्य के संबंध का आधार निस्वार्थ और निश्चल प्रेम होता है। ऐसा प्रेम जिसकी धार सतपुरूष धाम के पाक और पवित्र स्रोत से निकलती है। पूर्ण सद्गुरू और शिष्य का जब ऐसा मिलन होता है तो वह समय इतिहास के लिए यादगार का समय बनता है, आने वाले समय के लिऐ एक मिशाल बनता है। प्रेम का ऐसा मिलन जब भी होता है तभी एक नई सष्टि का सजन आरम्भ होता है आने वाले समय की दिशा निर्धारित होती है।

कहावत के इस पद्यांश का दूसरा सूत्र यह है कि ईश्वर के साम्राज्य का आधार प्रेम है, ऐसा प्रेम जो न केवल दिल के अन्दर छिपा रहे बल्कि उसको अपने प्रेमी के सामने प्रकट भी किया जाये। वैसे तो प्रेम अपने श्रेष्ठ रूप में स्वयं ईश्वर है जिसे शब्दों में नहीं बांधा जा सकता है लेकिन इस स्थूल संसार में अपनी छिपी हुई भावनाओं को प्रकट करना एक आवश्यकता भी है। ऐसा करने से एक दूसरे के प्रति समझबूझ बढ़ती है, किसी व्यक्ति के अन्दर छिपी हुई कला को उभरने में मदद मिलती है। हर व्यक्ति दूसरे के गुणों का वर्णन नहीं कर सकता। अनेक मनुष्य दूसरे मनुष्य की कमियों पर नजर रखते हैं और उन्हीं का वर्णन करते हैं। यह प्रवति उन मनुष्यों की नकारात्मक मानसिक प्रवति का द्योतक है, प्रतीक है। ऐसे मनुष्य जीवन में किसी भी क्षेत्र में विकास नहीं कर पाते हैं और न ही आस-पड़ोस के

लोगों के विकास में वास्तविक सहायता कर पाते हैं क्योंकि उनके स्वयं के अन्दर चेतना के निर्बाध बहाव में रूकावट है इसलिए उनका स्वयं का रास्ता भी रूकावटों और कांटों से भरा होता है। अतः व्यक्ति को हमेशा सकारात्मक नजरिया रखना चाहिए, पोजिटिव रूख अपनाना चाहिए। किसी विशेष अवसर पर दूसरे के गुणों को बखान करने में कंजूसी नहीं बरतनी चाहिए। इससे उस व्यक्ति में उत्साह की वद्धि होती है और कार्य में बरकत का सुमार होता है। इसलिये जीसस उसी प्रेम का इजहार करते हुए कहते हैं कि मैं निन्यानवे भेड़ों की तुलना में तुमसे सबसे अधिक प्यार करता हूं।

इस कहावत में स्पष्ट है कि जीसस ऐसी भेड़ों के स्वामी नहीं हैं जो आंख मीचकर चलती हैं, अंधाधुंध एक दूसरे का अनुसरण करती हैं, बल्कि उन भेड़ों को हांकने के पक्षधर हैं और ईश्वर के साम्राज्य का हकदार मानते हैं जो विवेकशील हैं, अपनी आत्मा के प्रति जागत हैं और स्वयं के अन्दर केन्द्रित हैं। ऐसा होने के साथ-साथ वे सभी भेड़ों की एकता के पक्षधर भी हैं। यदि पूर्ण एकता नहीं है, एक दूसरे के प्रति पूर्ण सहमति नहीं है तो वहां शांति का संचार कैसे हो सकता है? ईश्वर के साम्राज्य की स्थापना कैसे हो सकती है? ऐसे साम्राज्य की स्थापना के लिऐ क्या धर्म-परिर्वतन, धर्मयुद्ध या किसी जेहाद की आवश्यकता हो सकती है? कम से कम एक पैगम्बर के लिए यह कतई स्वीकार्य नहीं हो सकता है। यदि फिर भी हम ऐसे कार्य में शामिल होते हैं तो यह कार्य खुदा या खुदा के पुत्र का नहीं बल्कि एक शैतान की योजना का हिस्सा है।

राधास्वामी।